आदर्श कौन

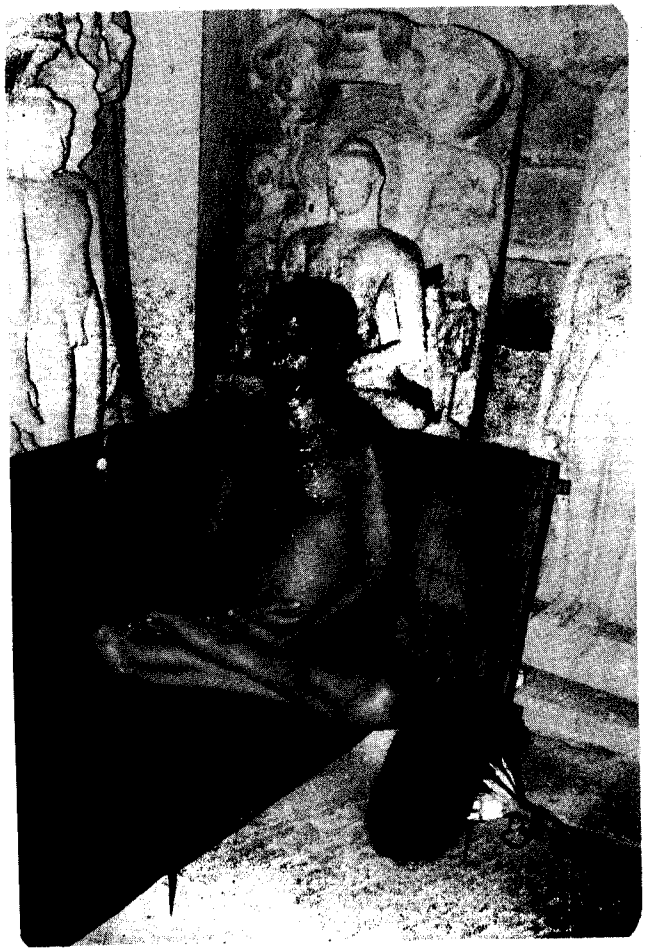

आचार्य विद्यासागर मुनि

राजुल दीदी

आदर्श कौन

आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के प्रवचनों का सार संक्षेप

-: प्रकाशक :-

गजेन्द्र पब्लिकेशन

2578, गली पीपल वाली, धर्मपुरा, दिल्ली-110006

आदर्श कौन
विविध अवसरों पर आचार्य श्री के प्रवचन

प्रकाशकिय :
नीरज जैन दिगम्बर

प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान :
गजेन्द्र पब्लिकेशन
2578, गली पीपल वाली
दिल्ली–110006

संस्करण :
2000 प्रतियाँ 1997 दिगम्बर

मूल्य 12/-

मुद्रक :
जे. एम. पिन्टर्स
2578, गली नीम वाली
धर्मपुरा, दिल्ली–110006

न धर्मो धार्मिकैर्बिना..... !

*** समन्तभद्राचार्य जी की दिव्य घोषणा है कि धर्मी के अभाव में धर्म नहीं रह सकता और धर्म के अभाव में धर्मी नहीं रह सकता "न धर्मो धार्मिकैर्बिना"।**

*** "परस्परोपग्रहो जीवानाम" यह सूत्र गुरू और शिष्य के बीच कैसे घटित होगा ? तो आचार्य कहते है कि आज का मोक्षमार्गी भी गुरू की आज्ञानुसार चल कर गुरू के ऊपर उपकार कर सकता है।**

*** सम्यग्दर्शन खरीदा नही जा सकता, वह बाहर से नही अन्दर से आता है। आचार्यो के उपदेशों से ग्रहण किया जाता है। सम्यग्दर्शन के चार अंग स्वोन्मुखी है और चार अंग परोन्मुखी है, पर की अपेक्षा रखते है।**

आचार्यों ने करूणा भाव के साथ हमारे ऊपर कितनी बड़ी कृपा की है। उस कृपा का जो भार है, उसे हम किसी भी प्रकार से उतार नही सकते, आचार्यों का हमारे उपर इतना बड़ा ऋण हैं उसे हम सिर्फ एक ही शर्त पर चुका सकते है। अन्यथा हम उनके ऋण के ऋणी बने रहेंगे और हमारा यह दयनीय जीवन तीन काल में भी सुधर नही सकेगा।

यदि आप लोग अपने पूर्वजों को संतुष्ट करना चाहते हो तो (वे और कुछ नही चाहते हैं सिर्फ) उनकी बात को मानकर, उनकी संस्कृति परम्परा को तुम्हें निभाना होगा। आज तक जिन्होने उनकी परम्परा के माध्यम से मुक्ति का लाभ लिया है, उनका कहना यही है कि यह परम्परा छोड़ दोगे तो मुक्ति का मार्ग छूट जायेगा। जिस समय हम उस रास्ते

से चलते है, उस समय रास्ता हमारे साथ चलता है। **समन्तभद्राचार्य जी की दिव्य घोषणा है कि धर्मी के अभाव में धर्म नही रह सकता और धर्म के अभाव में धर्मी नही रह सकता, "न धर्मो धार्मिकैर्बिना"।** धर्म की सुरक्षा चाहते हो तो धर्मात्मा बनो। धर्म जड़ नही है जिसकी सुरक्षा की न जा सके। धर्म कोई सम्प्रदाय नही हैं। धर्म को हम खरीद नही सकते, धर्म एक चैतन्य परिणति है जिसकी सुरक्षा हम उस चैतन्य परिणति के माध्यम से ही कर सकते है। इसके अलावा और कोई रास्ता नही है। कागजी घोड़े दौड़ा कर भले ही आप संतोष कर लें, कि हमने धर्म का बहुत प्रचार किया है।

आचार्य उमास्वामी द्रव्यों के उपकारो के बारे में विश्लेषण करते हुए जीव द्रव्य का वर्णन करते हुए कहते है। "परस्परोपग्रहो जीवानाम्" जीव का जीव के ऊपर उपकार किस प्रकार है ? उपग्रह का अर्थ "दुःखाव सानकरणम्" दुःख का अवसान करना ही उपग्रह है। दुःख और सुख का संवेदन करने वाला सिर्फ जीव द्रव्य ही है। अब उपकार किसके ऊपर करें तो, वे कहते है कि उस व्यक्ति के ऊपर उपकार करो जो आपत्तिग्रस्त है, जिसके ऊपर संकट आया है। उसको जिस किसी वस्तु की आवश्यकता है, उसे वह वस्तु देकर उसके ऊपर उपकार कर सकते है। अनादिकाल से जो भयभीत है, जिसे मोक्ष का मार्ग नही मिल रहा है जो आत्मा का उद्धार नही कर पा रही है बहुत प्रयास करके वह अपने आप यहाँ तक आया है, किसी का आलम्बन लेकर नही आया, एकमात्र अपना ही आलम्बन लेकर, चौरासी लाख योनियों को लांघकर, यहाँ तक आया है, लेकिन अब उसकी गाड़ी रुक रही है और जिस अपेक्षा से रुक रही है, उसका दुःख दूर कर पथ प्रशस्त कर देना ही सच्चा उपकार कहलाता है, एक प्रकार से छोटों के ऊपर बड़ों का उपकार हैं वह उतारने

का एक साधन "परस्परोपग्रहो जीवानाम्" यह सूत्र, आचार्य उमास्वामी जी का है, इसकी टीका आचार्य पूज्यपाद जी ने की है और बड़ी उदारता के साथ की है, कि हम क्या कहें, किस प्रकार जैनत्व की, अनेकांत की सुरक्षा होती है। उस व्याख्या के माध्यम से हमें अनेकांतात्मक जैन दर्शन का हृदय समझ में आ जाता है। **"ऐसा विश्व में कोई भी पंथ नहीं है, ऐसा कोई भी दर्शन नहीं है, जिसने इतनी महान उदारता का आलम्बन लिया हो, इस सूत्र में उन्होंने यह कहा है कि एक तरफ भगवान् है और एक तरफ पतित प्राणी है लेकिन उस पतित प्राणी का भी उपकार, भगवान् के ऊपर हो सकता है। मेरे विचार से अनेकांत के लिए इससे आगे गुंजाइश नहीं है।** समकक्ष वाले तो आपस में लेन देन कर सकते हैं, लेकिन यह ध्यान रखें कि विषम कक्ष वाले वे भी कर सकते हैं। पावनता का पूर्ण रूप से अनुभव करने वाले भगवान् और पतित जिसका जीवन अधूरा है। वह भी पावन जो भगवान् है, उनके ऊपर उपकार कर सकता है। इसको कहते हैं, भगवान महावीर का दर्शन।

जिसमें किसी प्रकार का अभिमान के लिए गुंजाइश नहीं है।

जिसमें प्रत्येक आत्मा के महान–महानतम अस्तित्व का कथन है।

कोई व्यक्ति उपकार करता है तो उसकी गर्दन ऊपर हो जाती है, वह फिर नीचे की ओर देखता ही नहीं है। किन्तु भगवान् के ऊपर भी जो आज का मोक्षमार्गी है, वह भी उपकार कर सकता है। और इस बात को भगवान भी मन्जूर कर रहे हैं। लेकिन आपको यह बात सुनने में बड़ी विचित्र लगती होगी। सेठ जी नौकर के ऊपर, मुनीम जी के ऊपर तो कुछ न कुछ उपकार कर सकते हैं। लेकिन मुनीम जी का उपकार उन सेठ जी के ऊपर कैसे होगा, तो आचार्य कहते हैं कि वह उनका काम हिसाब किताब सही करें यही मुनीम जी का सेठ जी के ऊपर

उपकार है। और सेठ जी के द्वारा उसे वेतन प्राप्त हो रहा है इस प्रकार एक दूसरे के ऊपर उपकार कर सकते हैं।

"परस्परोपग्रहो जीवानाम्" यह सूत्र गुरु और शिष्य के बीच में कैसे घटित होगा तो आचार्य कहते है कि आज का मोक्षमार्गी भी गुरु के ऊपर उपकार कर सकता है उनकी आज्ञानुसार चलकर वह धर्म की प्रभावना करता है। इसी का नाम है ऋण से मुक्त होना। जब तक हम लोग ऋणी बने रहेगें, आर्ष मार्ग को आचार्यो नें अपनाया है उस पर जब तक हम नहीं चलेगें तब तक हम मोक्षमार्ग के प्रचारक प्रसारक नहीं कहला सकेंगे। केवल बातों-बातों से काम नहीं चलने वाला। "न धर्मो धामिकैर्बिना" धर्म का प्रचार धर्मात्मा के माध्यम से ही होता है, मात्र धर्म का नाम लेने से नहीं धर्मात्मा जहाँ भी रहेगा, वहाँ उसके माध्यम से अहिंसा धर्म की सत्य धर्म की प्रभावना नियम से होगी इसमें कोई सैन्देह नहीं है। इसे भले ही रागी द्वैषी न देखे पर भगवान तो देख रहे हैं कि किसके द्वारा कितनी प्रभावना हुई है। शिष्य बिल्कुल ठीक-ठाक काम कर रहे है।

"परस्परोपग्रहो जीवानाम्" इस सूत्र का विश्लेषण मैं इसीलिए बताना चाहूँगा कि निर्वाण महोत्सव के दौरान जैन-समाज में एक प्रतीक बना है। और उस समय उसका बहुत प्रचार-प्रसार किया गया था, उस प्रतीक के बीचों बीच में उन्होंने एक ऐसा हाथ दिखाया है कि जैसे बिलकुल महावीर का हाथ उतार दिया हो, अभय का प्रतीक है वह हाथ उस प्रतीक के नीचे लिखा है "परस्परोपग्रहो जीवानाम्" कि किसी को आप भयभीत नहीं करें अभय दान दें यह ध्यान रखें तीन दानों के लिए तो पैसों की आवश्यकता पड़ती है पर अभय दान के लिए धन-पैसे की जरूरत नहीं है, और न ही शरीर की आवश्यकता है, बस ! उज्जवल

मन की आवश्यकता है। और वह मन कहीं से खरीदना नहीं है, अपने पास ही है। चाहें तो हम अभय दान कर सकते हैं। मारने वाले अपने अपकारक प्राणी का भी भला करना, उसके उद्धार की बात सोचना अभय दान है।

भगवान् महावीर स्वामी ने कहा है कि अभय दान के माध्यम से सबसे अधिक प्रभावना होती है। जिसके पास कुछ भी माया नहीं रहती, माया का अर्थ है अन्दर कुछ और बाहर कुछ और तो जिसके मन में माया नहीं है वही व्यक्ति सबसे ज्यादा भगवान महावीर स्वामी के मार्ग का प्रचारक है। आप अपनी दृष्टि में चोरी से बच रहे है, असत्य से बच रहे हैं, व्यभिचार से बच रहे हैं तो केवल बस इसी को धर्म समझने लगते है, कि हमने कभी झूठ नहीं बोला कभी चोरी नहीं की, व्यभिचार नहीं किया पर मैं कहूँगा कि आपने सब कुछ किया है क्योंकि आपके पास परिग्रह है। इस परिग्रह के निमित्त से ही पाँचों पाप हुआ करते हैं और आप उसी को बढ़ाने में लगे हुए हैं। आप इतने पुण्यशाली नहीं है कि परिग्रह अपने आप आपके पास आ जाए। तीर्थंकर चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण आदि जो महा पुरुष लोग होते हैं, उन्हें नियोग से पुण्य का लाभ मिलता है। भोग की सामग्री मिलती है। किन्तु आप लोगों को पाप करके परिग्रह एकत्रित करना पड़ता है। जितना परिग्रह आपके पास है, समझो उतना ही पाप एकत्रित है। आरम्भ के बिना परिग्रह का संकलन नहीं होता ऐसी स्थिति में आप भले ही समझते होंगे कि हम बहुत धर्मात्मा बनते चले जा रहे हैं, किन्तु ऐसा नहीं है। दान देने वाला व्यक्ति भी जब तक धर्मात्मा नहीं कहला सकता तब तक वह सही रूप से दान नहीं देता।

कोई चोर बीस हजार रुपया चुराकर के दस हजार धर्म के कार्य दानादिक में दे देता है, तो क्या वह सही दानी है ? नहीं अब वह आधा डाकू रह गया, अभी तक तो वह पूरा डाकू था और आगे का संकल्प छोड़ा नहीं इसलिए वह पूरा डाकू ही बना रहा। क्योंकि आगे चोरी का संकल्प ज्यों का त्यों है। चोरी करके दान करना धर्म का दिखावटी पन है, प्रदर्शन है, आचार्य कहते हैं कि जो ज्यादा आरंभी, विलासी है वह व्यक्ति धार्मिक क्षेत्र में निम्न स्तर पर है। और वह व्यक्ति अगले जीवन में यहाँ तक नीचे जा सकता है कि अधोगति की ओर भी उतर सकता है, भले ही वह बाहर से धर्म कर रहा हो तो भी चला जाएगा। यदि उसकी पाप प्रवृति हट गई तो वह समाज के लिए वरदान सिद्ध हो जाता है।

"परस्परोपग्रहो जीवानाम्" का अर्थ यह हुआ कि हम दूसरे को तकलीफ दिये बिना, दूसरे की तकलीफ यथा शक्ति दूर करने का प्रयास करें। उसकी तकलीफ दूर करने में हमारे तन, मन, वचन तीनों लगें और इन पुण्यमयी शुभ भावों के माध्यम से हमें भी ऐसी प्रशस्त सामग्री मिल जाती है। बन्धुओ ! कहाँ से तो हम आये हैं और पुण्य के उदय से हमें दुर्लभताएँ प्राप्त हुई है, ये दुर्लभताएँ भी क्षण-भंगुर है, कर्म के ऊपर आश्रित है। अतः प्राप्त हुई इन दुर्लभताओं का सदुपयोग करें।

एक व्यक्ति के ऊपर बांस गिर गया है, उसने गाली नहीं दी ध्यान रखना ! और थोड़ा सा कोई पीछे वाला यूं कर देता है तो आँखें लाल हो जाती है। ऊपर बाँस गिर गया तो भी उसकी आँखें लाल नहीं हुई और आँखें लाल किसके ऊपर करें, बाँस के ऊपर तो कर नहीं सकते। यदि इस प्रकार का तत्व ज्ञान आपको हो जाये कि हमारा तो कर्म का उदय है, ठीक है, अपने को क्या मतलब है। सामने वाला यदि लट्ठ भी

मार रहा हो तो उसके लिए भी रास्ता खुल जाएगा, वह कहेगा कि भैया! मैं मार तो रहा हूँ, पर यह कुछ भी नहीं कर रहा है। अपने कर्म का उदय समझ रहा है। वास्तव में यह है धर्म का अनुचरण।

अब जड़ को क्या कहें ? उसी प्रकार जो मारने के लिए आता है, उसे जड़ समझो, वह तो अज्ञानी हैं, स्वरूप का बोध भी उसे नहीं है, धर्म का आचरण भी उसे मालूम नहीं है। कोई गाली दे रहा है देने दो, कोई मारने आया है आने दो वह मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। इस प्रकार का भाव धर्मात्मा के मन में जाग्रत होता है। सामने जो व्यक्ति आया है उसके प्रति वह धर्मात्मा सोचता है कि हे भगवान् ! इसे सदबुद्धि दो, ये भी केवल ज्ञान को प्राप्त कर सकें, सच्चे मार्ग पर आरूढ़ हो। बड़ी लम्बी-चौड़ी बातें हम करते चले जाते हैं किन्तु अहिंसा क्या है ? सत्य क्या है ? हमारा धर्म क्या है ? इतनी सी बातें आपके जीवन में क्या नहीं हो सकती ? क्यों नहीं हो सकती अवश्य हो सकती है।

हम लोगों को आचार्य कई प्रकार से समझाते है, बोध देते हैं कि यह हमारी बात किसी भी प्रकार से मान लें। एक बार मंजूर हो जाए। इस प्रकार कहने का तात्पर्य यह है कि वे हमारा उत्थान चाहते हैं। माँ एक बार कहती है कि बेटा ! मान ले मेरी बात को जब वह नहीं मानता है, तब वह माँ कहती है कि तू मानता नहीं है जोर से कहती है और फिर भी नहीं मानता है, आपको तो सब मालूम ही है।

माँ यदि रोटी बना रही हो तो चूल्हें में से लाल-लाल अंगारा खेंचना ही पड़ता है, तब वह मानता है, जब नहीं मानता है तब ही माँ को ऐसा करना पड़ता है। इस प्रकार आचार्य परमेष्ठी शब्दों के माध्यम से समझाते हैं, कभी प्रिय, कभी अप्रिय, कभी भव्य कहते हैं तो कभी पागल कहते हैं। कभी सुजान कहते हैं। सुजान कहने से तो आपका चेहरा फूल जाता

है और मूर्ख कहने से आपको बुरा लगता है, आप कहते है कि देखो! हमें ये मूर्ख कह रहे हैं। आपको यह तो समझना चाहिए कि आचार्यों ने हमारे ऊपर कितना बड़ा उपकार किया है, अपना मौलिक समय निकाल कर बड़े-बड़े ग्रन्थों की रचना की। बन्धुओं ! यदि आचार्यों ने हमें ग्रन्थ लिखकर नहीं रखे होते तो पूर्व और पश्चिम दिशा तक याद नहीं रहती। माता-पिता कुछ क्षण के लिए ही काम आते है। किन्तु पवित्र जिन वाणी माता ये वीतरागी गुरु भव-भव से काम आ रहे है। महावीर स्वामी को मोक्ष गए करीब 2 ½ हजार वर्ष हो चुके हैं, उस समय के लिखे हुए ग्रन्थ हमें आज भी प्राप्त हो रहे हैं युग के आदि से यह परम्परा चल रही है इस परम्परा के माध्यम से हमें जो कुछ लाभ मिला है, हमारा कर्त्तव्य है कि आगे के लिए इस मार्ग को संकीर्ण न बनाकर विस्तृत ही बनाए रखें तो यह कार्य बहुत महान होगा, जिसके माध्यम से असंख्यात जीव अपना कल्याण करेंगे। काल का प्रभाव ऐसा बुरा पड़ता जा रहा है कि हम कुछ कह नहीं सकते, फिर भी धर्मात्मा से रहा नहीं जाता वह किसी भी प्रकार से उस मार्ग को जारी रखना चाहता है। वह अधर्मात्मा को ऊपर उठाने का प्रयास करता है। **धर्मात्मा वह होता है जो सामने वाले अधर्मात्मा को अपने समान बनाता है।** दाता भी ऐसा होना चाहिये जो सामने वाले को अपने समान देखें, अर्थात् तुम्हारे पास तो है ही नहीं, ले-ले यह मैं दे रहा हूँ, याद रख मैंने तेरे साथ उपकार किया है। बड़ा वह होता है जो छोटों को भी अपने समान बना लेते हैं, फिर छोटा यह न समझे कि आपने मुझे अपने समान तो बना लिया है, अब मैं आप से नीचे क्यों बैठूँ। ऐसा समझना गलत है। उसका परम कर्त्तव्य है कि जो बड़ा है उसकी विनय करें किन्तु जो बड़ा है वह उससे विनय न चाहे, इसके माध्यम से प्रेम, वात्सल्य जो बढ़ता है। कई बातें है जिन्हें हम जीवन में उतारने का प्रयास नहीं कर रहे हैं। हम आगे

इसको धारण कर लेंगे इस प्रकार भावना ठीक नहीं है। क्योंकि आगे क्या होने वाला है इसका कोई पता नहीं हैं, अतः इसी में हमारी भलाई है कि भगवान् ने जो मार्ग हमें बताया है, शीघ्र ही हम उसका अनुसरण कर लें। जब तक हमारी बुद्धि ठीक-ठाक काम कर रही है, शरीर ठीक-ठाक काम कर रहा है, तब तक हम धर्म-धारण कर सकते है और अल्प समय में ऐसा यदि कार्य कर लेते है तो हमारी यह बुद्धिमानी-मानी जायगी।

यदि हम विषयों में लीन होकर अपनी शारीरिक शक्ति मानसिक शक्ति खो देंगे तो अन्त में धर्म का आधार नहीं ले सकेंगे। जबसे जीवन प्रारम्भ होता है तब से धर्म का पालन करना चाहिए, तब कहीं अंत में जाकर कुछ काम हो सकेगा। धर्म कोई हल्की-फुल्की चीज नहीं हैं जिसका पालन बुढ़ापे में हो सके। हम सभी संसारी लोगों की यह स्थिति हो रही है इसके उपरांत भी आचार्य देव करुणा करके कहते हैं कि बेटा! यह ठीक है अपनी बुद्धि के अनुसार तो तुमने ग्रहण कर लिया लेकिन थोड़ा विचार तो करो कि आगम में क्या क्या लिखा है। आगम में सम्यग्दर्शन के साथ-साथ आठ अंगों का निरुपण किया गया है, जिसमें चार अंग स्वाश्रित है और चार अंग पर की ओर दृष्टिपात करते है यानी पराश्रित है। निशकित, निःकांक्षित, निर्विचिकित्सा और अमूढ़ दृष्टि, ये चार अपने लिए है, शेष चार भी अपने लिए ही है पर वे स्वोन्मुखी नहीं परोन्मुखी है। स्थितिकरण, उपगूहन वात्सल्य और प्रभावना, ये चारों अंग पर की अपेक्षा रखते-हैं, यानी इनका पालन सामने वाले साधर्मी व्यक्ति के माध्यम से होता है। आचार्यों ने इन अंगों के माध्यम से धर्म के प्रचार-प्रसार की बात कही है। इन अंगों को पालन किसने कितना किया है, यह बात अलग है। हम लोगों की कुछ आदतें ऐसी

है जिनके ऊपर हम विचार नहीं करते, जिस किसी के मुख से जो कुछ भी हम सुन लेते है, उसी को जिनवाणी को सच्चा स्वरूप समझ लेते है और समझ लेते है कि हमने धर्म श्रवण कर लिया। हमारे पास उपदेश और उपदेष्टा इन दोनों की परख होनी चाहिए, सच्चे देव क्या है ? शास्त्र और गुरु का स्वरूप क्या है ? धर्म का प्रचार-प्रसार करने वाला वैसा होना चाहिए। ध्यान रखना मात्र आप ही लोगों ने धर्म पालन करने का ठेका नहीं ले रक्खा है। असंज्ञी पंचेन्द्रिय भी धर्म श्रवण कर सकता है, जिसके पास मन नहीं है वह भी धर्म श्रवण करता है। श्रवण का अर्थ है कानों के माध्यम से सुन लेना और उसके लिए मन की कोई आवश्यकता नहीं है। यदि आप सम्यग्दर्शन की सुरक्षा और धर्म का आलम्बन लेना चाहते हो तो धर्म श्रवण के उपरान्त मन के माध्यम से सुने और समझे यह संसारी प्राणी मन का प्रयोग किए बिना ही धर्म का श्रवण कर रहा है और जिसने ग्रहण के बिना मात्र श्रवण किया है तो पूरा का पूरा धर्म नहीं कमा रहा है। लेकिन सुनना ही छोड़ दो, ऐसा मैं नहीं कर रहा हूँ, छोड़े नहीं, जितना प्रयास किया उतना तो अच्छा ही है सम्यग्दर्शन किसी दुकान से नहीं खरीदा जा सकता, वह बाहर से नहीं आता किन्तु अन्दर से जागृत किया जाता है, आचार्यों के उपदेशों से ग्रहण किया जाता है। संत क्या कह रहे हैं, जब इसको समझोंगे, तभी धर्म हासिल कर सकोगे, नहीं तो नहीं। मैं सोचता हूँ बार-बार विचार करता हूँ कि आचार्यों ने धर्म को श्रवण करके धर्म को ग्रहण करने की दुर्लभता बताई है। धर्म श्रवण करना अलग है और उसके ऊपर श्रद्धान करके तदनुकूल आचरण करना अलग है, यह संसारी प्राणी धर्म सुनता तो है लेकिन उसको मुख्य नहीं बनाता तिलोयपण्णत्तिकार ने कहा है कि कुछ जीव समवशरण जाकर कुछ भी धर्म श्रवण नहीं करते, यदि करते भी है तो मुख्य दृष्टि उनकी कुछ और ही रहती है। वहाँ पर बहुत

प्रकार की नाटक शालाएँ रहती है, भोजन शाला रहती है, अच्छे-अच्छे गार्डन रहते है, ठंडी-ठंडी हवा भी चलती है, इन्हीं इन्द्रिय विषय पोषक स्थानों पर जाकर कुछ जीव बैठ जाते है, इसलिए वे समवशरण में प्रभु के पास तक जाते ही नहीं है। यहाँ पर भी धर्मशाला में से ही सुनलें आवाज तो आ रही है और मुँह से चाय भी पीते जाएँ, कान से तो सुनना ही है, क्या बात हो गई। अर्थ यह कि धर्म को हमने इतना सस्ता बना लिया है। कान अपना काम करे मुँह अपना काम करे भिन्न-भिन्न तो है ही। लेकिन भैय्या ! स्वाद लेने वाला तो एक है, जिस समय मुख से स्वाद लेगा उस समय वह अन्य इन्द्रियों से काम नहीं ले सकेगा। और धर्म श्रवण भी नहीं कर सकेगा। यह ध्यान रखो, आप यहाँ है और मन कहीं अन्यत्र हो तो वह मात्र श्रवण ही कहलायेगा, उसका ग्रहण नहीं हो सकेगा, इसीलिए मनोयोग के साथ सुनना पड़ता है। धर्म ऊपर-ऊपर ही नहीं है वह तो आत्मा की अतल गहराई में छिपा हुआ है, जिसे खोजने के लिए जिसे निकालने के लिए बहुत परिश्रम की आवश्यकता होती है। और गहराई में पहुंची हुई वस्तु को निकालने के लिए पानी में डूबना पड़ता है। डूबने के लिए तैरना सीखना अनिवार्य है फिर डूबना होता है, उसके लिए बहुत शक्ति, बहुत परिश्रम की आवश्यकता होती है। धर्म क्या है यह समझ में तो आ रहा है, लेकिन उसको ग्रहण में, खोजने में बहुत परिश्रम की आवश्यकता होती है।

एक बार की बात है, जब मैं नाइन्थ कक्षा में पड़ता था। हाई स्कूल जाने के लिए तीन-चार मील जाना पड़ता था। दूसरे गाँव में वह स्कूल था। एक दिन की बात है, स्कूल लगने में सिर्फ पन्द्रह बीस मिनिट की देर थी, जल्दी ही स्कूल जाना चाहता था, लेकिन साइकिल में हवा नहीं थी। मैं साइकिल की दुकान पर पहुँचा और मैंने कहा कि भैया थोड़ी

साइकिल में हवा भरना है पंप लाओ, उनके पंप देने से में साइकिल में हवा भरने लगा, दस-बीस बार पंप करने पर भी मैंने टायर दबाया तो उसमें हवा नहीं जा रही थी। मैंने सोचा कि क्या बात हो गई, कपड़े को लगाकर पुनः हवा भरने लगा लेकिन फिर वही बात हवा नहीं जा रही थी। वह दुकानदार मेरी स्थिति को देख रहा था, अपने आप यही कहेगा, मैं क्यों कहूँ, जब तीसरी बार देखा तो वही स्थिति, तो मैं इधर-उधर देखने लगा क्योंकि देर हो रही है और साइकिल में हवा नहीं है। तब दुकानदार बोला कि साइकिल पंचर तो नहीं है, मैंने कहा कि नहीं पंचर तो नहीं है, वह बोला, देखो तो सही, देखा तो पंचर नहीं मिला, जब पंचर नहीं है तो हवा क्यों नहीं जा रही है, तो उन्होंने कहा कि भैया और कुछ नहीं है इसका बाल टू कटा है, जानते हो भैया बाल टू का अर्थ, बाल का अर्थ है छिद्र और उस छिद्र पर जब तक टू नहीं चढ़ाएगे तब तक उसमें हवा नहीं भर सकते। टायर भी ठीक है हवा भरने वाला भी ठीक है, ट्यूब भी ठीक लेकिन मस्तिष्क ही ठीक नहीं है आपका बस ! बाल टू खरीद लो। मैंने दस पैसे निकाल कर दे दिए और उन्होंने बाल टू दे दिया उसको लगाते ही, दस बार पंप मारने से हवा पर्याप्त मात्रा में भर गई। अंदर तो जाती थी लेकिन बाल टू कटी होने से वह पुनः बाहर आ जाती थी। उसी प्रकार आपके कानों में प्रवचन के शब्द अन्दर तो चले जाते हैं, किन्तु बाल टू नहीं होने के कारण बाहर आ जाते है बस, इतनी सी कमी है आपकी। मात्र दस पैसे खर्च करके एक बाल टू खरीद लो आपकी यात्रा बिल्कुल ठीक हो जायगी।

जैन धर्म की प्रभावना इसलिए नहीं हो पा रही है, कि जहाँ पर जो कुछ आवश्यक है, वह तो आपने किया, लेकिन एक बाल टू आप नहीं खरीद पा रहे हैं। धर्म के प्रचार के लिए लाखों रुपये खर्च करने

की आवश्यकता नहीं है। सहिष्णुता, प्रेम, दया, एक दूसरे के प्रति वात्सल्य उमड़ आना, गुणिषु प्रमोद वाली बात आज यहाँ नहीं है, और वह इसीलिए नहीं है कि धर्म का यथार्थ स्वरूप हमें अभी समझ में नहीं आया उसी का फल है कि हम अपने जीवन को विषयों में, कषायों में समर्पित कर रहे है, और जीवन का लम्बा समय हम यों यही समाप्त कर रहे हैं। 'गंगा नहाए गंगादास, जमुना नहाए जमुनादास वाली कहावत आज यहाँ पर चरितार्थ हो रही है। मौलिक जीवन में क्या किया, क्या धर्म का प्रचार किया, कितनी सच्चाई से व्रतों को पाला, इसे देखो, जानो और फिर यथार्थता का अनुकरण करो।

आचार्य कुन्द-कुन्द ने मुख्य रूप से साधु वर्ग को संबोधित करने के लिए अनेक प्रकार के साहित्य का सामार्जन किया और आचार्य समन्तभद्र ने श्रावकों को सुधारने का प्रयास किया। सर्व प्रथम श्रावकों के लिए डेढ़ सो श्लोक प्रमाण रत्नकरण्डक श्रावकाचार नामक ग्रन्थ लिखा। संसार से भयभीत श्रावक कैसा आचरण करें। आचार, विचार और व्यवहार का संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित अच्छे ढंग से वर्णन किया है। श्रावकों के लिए हेय क्या है, उपादेय क्या है इस सब बातों का ज्ञान इस छोटी सी पुस्तक से होता है। ध्यान रखें कुछ प्रसंग ऐसे हैं जिस प्रसंगों में साधु से अच्छा श्रावकों को माना है।

*** गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो, निर्मोहो नैव मोहवान्।**
अनगारो गृही श्रेयान्, निर्मोहो मोहिनी मुनेः।।

मोही मुनि की अपेक्षा निर्मोही गृहस्थ अच्छा है, जिसने मोह को निकाल दिया है, मोह का वमन किया है, उदासीनता धारण की है वह गृहस्थ बहुत अच्छा है, लेकिन वह विषयी, कषायी मुनि गृहस्थ के समान

* रत्नकरण्डक श्रावकाचार/३३

जो परिग्रह लादता जा रहा है, वह मोक्षमार्गी नहीं है इतना कहने से गृहस्थ चार अंगुल ऊपर न चढ़े। यह लक्षण नहीं बाँधा है, यह अतिशयोक्ति भी नहीं है। जो विषयी, कषायी है, वह कैसा मुनि ! यह कहा है, वह गृहस्थ अच्छा है उस मुनि से, अच्छा का अर्थ यह नहीं है कि वह घर पर बैठे-बैठे ही मुक्ति प्राप्त कर लेगा। यह तो गृहस्थ को आदर्श रख कर तुलना की है। इसके उपरान्त गृहस्थ को लथेड़ा है। उलझे हुये मुनियों को सुलझे हुए गृहस्थों को आदर्श के रूप में रखा है और उलझे हुए गृहस्थों के लिए सुलझे हुए पशुओं के उपदेश दिये है, स्वयं भूरमण द्वीप से स्वर्गों की पूर्ति हो जाती है, उन पंचम गुणस्थान वर्ती पशुओं के माध्यम से यहाँ से तो बहुत जाते है। वहाँ से अगर मार्ग बंद हो जाए तो स्वर्ग खाली पड़ जाएगा।

जिस प्रकार कोई सेठ जी हैं और उनके मारने के बाद मान लो घर में कोई नहीं है तो वह दश खण्ड का मकान खाली रह जाता है, उसी प्रकार स्वर्ग के भवन खाली रह जाएँगे। आचार्य समन्तभद्र की दृष्टि में आपका जीवन पशुओं से भी गया बीता है। आपसे अच्छे तो पशु है।

रामायण का उद्घाटक है जटायु पक्षी। वहीं से रामायण का प्रारम्भ होता है। सीता हरण के रहस्य को जानने वाल भी जटायु पक्षी था। रावण के विरोध में सर्व प्रथम आवाज उठाने वाला वह जटायु था, जिसके लिए राम का आर्शीवाद था। राम ने अपने पास उस जटायू पक्षी को रख रक्खा था। जो मांस भक्षी था। मांस भक्षी को तो देखकर आप दूर भाग जाएँगे लेकिन राम नहीं भागे थे। उस जटायू पक्षी के चारण ऋद्धिधारी मुनि महाराज के चरणों के गंधोदक को सिर पर चढ़ाया था और अपने जीवन को कृत्य-कृत्य किया था। सम्यग्दर्शन को

धारण करके उसने व्रतों को भी धारण किया था। व्रती बनने के उपरान्त राम सीता ने अपने साथ रखकर उसका पालन पोषण किया था। सीता के ऊपर आई विपत्ति के समय उसने यथा शक्ति सीता की रक्षा की, और अन्त में अपने प्राणों को न्यौछावर कर दिया इसको कहते हैं "परस्परोपग्रहो जीवानाम्"। उसने कहा नहीं कि कम से कम मेरा नाम तो लिख दो लिखने की कोई आवश्यकता नहीं है। वीतरागता की दृष्टि में अपने आप नाम आ जाता है। अच्छाई कहीं छुपती नहीं और बुराई भी कहीं छुपती नहीं है। संसारी प्राणी को अपने आपके लिए जटायू पक्षी के जीवन से ऊपर उठाना चाहिए।

अहिंसा धर्म का पक्ष लेकर जटायू पक्षी ने रावण के साथ युद्ध करना मंजूर किया था। अंत में वह भले ही रावण से हार गया था, क्योंकि हाथी के साथ मक्खी का झगड़ा नहीं होता, लेकिन हाथी के साथ लड़ने वाला भी कुछ दम रखता है इसको कहते है सत्य का पक्ष। असत्य की तरफ भले ही हाथी हो और सत्य की तरफ मच्छर हो भले ही वह हार जाये, लेकिन लड़ने का प्रयास वह अवश्य करता है। धर्म का पक्ष लेना आवश्यक है, धन का पक्ष लेने से आज तक यह अनर्थ हुआ है। **जो सत्य है वही हमारा है, जो हमारा है वही सत्य है, ऐसा नहीं।** जिन्होंने आगम का अध्ययन किया हैं उनका कहना सही हो सकता है रवीन्द्र नाथ टैगोर कवित्व के क्षेत्र में अच्छे कवि हुए है, उन्होंने अपनी कविता में लिखा है **सत्य भले ही शूली पर टंगा हो, फिर भी वह सत्य ही रहेगा और असत्य भले ही सिंहासन पर बैठा हो फिर भी वह असत्य ही रहेगा** सत्य की तरफ मात्र एक व्यक्ति है, इसलिए वह असत्य की कोटि में आ जाए, ऐसा नहीं है, और असत्य की ओर बहुत भीड़ भी हो तो भी वह सत्य की कोटि में नहीं आ सकेगा। वह पंचम काल की बलिहारी है कि सत्य

को सूली टंगना ही देखा जाएगा, मैं समझता हूँ कि वह उसके ऊपर उपसर्ग है, और सत्यवान के ऊपर ही उपसर्ग होता है लेकिन उपसर्ग के होने पर भी वह असत्य को स्वीकार नहीं करेगा, सत्य का ही प्रतिपादन करेगा। और सत्य क्या है ! असत्य क्या है ! इन सब बातों का रहस्य दुनियाँ को अपने आप ही मालूम पड़ जाता है। धर्म की सुरक्षा के लिए एक व्यक्ति भी पर्याप्त है और उसी के माध्यम से हमें धर्म का लाभ मिल सकता है धर्म लाभ प्राप्त करने के लिए हम सभी को कमर कसना होगी यदि आप लोग अधर्मात्मा भी बन जाएँ तो एक धर्मात्मा ही धर्म की सुरक्षा कर लेगा। यह बात ध्यान रखना ! धर्म की सुरक्षा में पशुओं का भी योगदान है श्रावकाचारों में श्रावकों को समझाने के लिए जितना आदर्श पशुओं का है, उतना किसी ग्रहस्थ का नहीं। मातंग का उदाहरण है, उसमें उसकी अंहिस के प्रति विश्वास को परिलक्षित किया गया है। धर्म पवित्र है, अनादि अनिधन है। धर्म शरीर के पीछे नहीं, धर्म आत्मा के पीछे है। धर्म में आत्मा है, आत्मा में धर्म है। शरीर में आत्मा होते हुए भी शरीर को कभी भी धर्म नहीं माना है। यह शरीर धर्म का साधन तब बन सकता है, जब वह विषय-कषाय से ऊपर उठ जाता है, तो धर्म के साथ-साथ उसकी भी पूजा हो जाती है, रत्नत्रय धारण करने पर शरीर भी पवित्र हो जाता है।

*** स्वभावतो शुचौ काये, रत्नत्रयपवित्रते।**
निर्जुगुप्सा गुणप्रीतिर्मता निर्विचिकित्सता।।

स्वभाव से तो यह कथा अशुचिमय है। अपवित्र है। भले आप इसको लाइफबाय लगाओ, हमाम आदि तमाम साबुनें लगाओ लेकिन एक घन्टे के बाद यह अपना गुण धर्म बता देगा और आपका जीवन इसी में बीत गया है।

"देह परसते होय अपावन, निशदिन मल जारी"

* रत्नकरण्डक श्रावकाचार/१३

देह तो अपावन है, यदि पावन बनाने का लक्ष्य है तो धर्म को धारण करना आवश्यक है। आज तक ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं हुआ जिसने धर्म को धारण किए वगैर शरीर को पवित्र बनाया हो। तपस्या के माध्यम से मुनि महाराज के शरीर पर जो मल एकत्रित हो जाता है, वह औषधि का काम कर जाता है। अन्दर तप की सुगंधी के कारण वह डायबर्ट (Divert) हो जाता है। आप रात दिन सुगंधित पदार्थों को अपने शरीर पर लगाकर गंदा कर रहे हैं। शरीर के कुछ अवयवों से निरंतर मल झरता रहता है। मल का पिटारा यह घिनावना शरीर है। यदि आप शरीर के पीछे, रूप के पीछे मद करेंगे, कषाय करेंगे तो ध्यान रखना अनंत शरीर आपको और मिलते चले जाएँगें कुल का अभिमान, जाति का अभिमान, वंश का अभिमान जो व्यक्ति करता है। वह सम्यग्दर्शन को दूषित करता है।

"मद धारे तो यही दोष,
वसु समकित को, मल ठाने।

छहढाला की इन पंक्तियों का पाठ आप रोजाना करते हैं। उसमें कहा है कि आठ मदों को धारण करने वाला, सम्यग्दर्शन बढ़ा नहीं रहा, घटा रहा है। यदि ये मद आ जाते हैं, तो सम्यग्दर्शन साफ हो जाता है, मात्र ऊपर की क्रिया रह जाएगी, इसमें कोई संदेह नहीं है। आप लोग जब तक अपने धर्म को नहीं पहचानोगे, रत्नत्रय अंगीकार नहीं करेंगे तब तक मद ही करते रहेंगे। मदवान व्यक्ति उन्मत्त कहलाता है। वह निज के स्वरूप को नहीं पहचान सकेगा। मद हमारे लिए खतरनाक है। व्रतों में दोष लगाने वाला यह मद नरक में भी ले जाता है। अतः अन्त में मैं यही कहना चाहूँगा कि आज आप लोग दस पैसे खर्च करके धर्म रूपी बाल ट्यूब खरीद लीजिए, तो बहुत अच्छा होगा। आपका

समय हो रहा है, आप धर्म श्रवण कर रहे हैं, बहुत अच्छा है, अब अंदर उतर जाय तो ठीक है क्योंकि आपकी मोक्ष यात्रा, अंदर टिकने से ही होना संभव है। धर्म यदि अपने अंदर उतर जाए तभी कुछ काम हो सकता है, अन्यथा नहीं। इसलिए आठ मदों को छोड़ने का प्रयास आपको करना है। ध्यान रखें यदि सम्यग्दर्शन निर्मल रहेगा तभी वह चारित्र के कार्य का निष्पादन करेगा। आप लोगों का महान पुण्य का उदय है, जो इस प्रकार की दुर्लभ पर्याय प्राप्त हुई है, क्यों कि बारह भावना में मंगतराय जी कहते हैं :-

नरकाया को सुरपति तरसे,
सो दुर्लभ प्राणी।

इस पंक्ति को जब भी मैं स्मरण करता हूँ, तो मुझे विलोमता नजर आती है "सुरकाया को नरपति तरसे, सो दुर्लभ प्राणी" ! आप लोग, सुरकाया को तरस रहे है, जो व्यक्ति शरीर को ही सब कुछ समझता है, वही इस प्रकार सोच सकता है। क्योंकि वह तो दिव्य शरीर है और यह सड़ा-गला शरीर है। जो धर्म से विमुख होकर कार्य करेगा वह यही चाहेगा, इसलिए इस पंक्ति को थोड़ी होशियारी के साथ पढ़ा करो। इस काया को मिलने के उपरान्त कितना जीवन निकल गया है आपको मालूम तक नहीं है, कम से कम नरकाया की सार्थकता को समझो। विषय भोग के लिए यह काया नहीं मिली है। जो प्रमाद को छोड़कर जिस समय जाग्रत हुआ है, उसी समय उसने नरकाया को सार्थकता समझ ली।

जब राजा श्रेणिक मरणोन्मुख हो जाता है, तब उसको अपने किये हुए अनर्थ का फल ज्ञात होता है और उसके रोंगटे खड़े हो जाते है, आँखों से अश्रुधारा बहने लगती है कि हे भगवान्। मैंने अनर्थ तो कर लिया है; अब कोई रास्ता है। हाँ.....है, बस प्रायश्चित करले, सब कुछ ठीक

हो जाएगा। ३३ सागर की आयु प्रमाण सप्तम पृथ्वी का बंध किया था। और बाद में विशुद्ध परिणामों से वह कितना रह गया, मात्र ८४ हजार वर्ष। यह सब सम्यग्दर्शन की महिमा है, आप लोग मद नहीं करें, जो मद नहीं करता है, वही सच्चा धर्मात्मा माना गया है, "न धर्मो धार्मिकैर्बिना" इस कारिका के तीन चरण और देखें तो मालूम चल जाएगा।

स्मयेन योऽन्यानत्येति, धर्म स्थान् गर्विताशयः।
सोऽत्येति धर्म मात्मीयं, न धर्मो धार्मिकैर्बिनाः।।

यदि मद के वशीभूत होकर के दूसरे धर्मात्मा को जो नीचा दिखाना चाहता है, वह धर्मात्मा नहीं है। इसलिए आप कभी भी मद को नहीं करें, जिसमें अपना और पर का कल्याण निहित है।

महावीर भगवान की जय..... !

ब्रह्मचर्य : चेतन का भोग.....

ब्रह्मचर्य का अर्थ वस्तुतः, सही-सही मायने में है—चेतन का भोग। ब्रह्मचर्य का अर्थ भोग से निवृत्ति नहीं है, भोग के साथ एकीकरण और रोग-निवृत्ति है।

जड़ के पीछे पड़ा हुआ व्यक्ति, चेतन द्रव्य होते हुए भी जड़ माना जायेगा। जिस व्यक्ति के जीवन का लक्ष्य आत्मा नहीं है वह गुलाम है।

बोध की चरम सीमा होने के उपरान्त ही शोध हुआ करता है। उस बोध को ही शोध समझ लें तो गलत है और आज यही गलती हो रही है। शोध का अर्थ है—अनुभूति होना।

मणिमय मन हर निज अनुभव से
झग-झग झग-झग करती है,
तमो-रजो अरु सतो गुणों की
गण को क्षण में हरती है।
समय-समय पर समयसार मय
चिन्मय निज ध्रुव मणिका को
नमता मम निर्मम मस्तक तज
मृणमय जड़मय मणिका को।।

धर्म प्रेमी बन्धुओ ! भगवान महावीर ने जो सूत्र हमें दिये उनमें पाँच सूत्र प्रमुख हैं, उनमें से चौथा सूत्र ब्रह्मचर्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

पतित से पावन बनने का यह एक अवसर है। यदि हम इस सूत्र का आलम्बन लेते हैं तो अपने आपको पवित्र बना सकते हैं। ब्रह्मचर्य

की व्याख्या आप लोगों के लिए नई नहीं है, किन्तु पुरानी होते हुए भी उसमें नये पन के दर्शन अवश्य मिलेंगे। ब्रह्मचर्य का अर्थ है—अपनी परोन्मुखी उपयोग धारा को स्व की ओर मोड़ना बहदृष्टि-अन्तदृष्टि बन जाये, बाहरी पथ-अन्तर पथ बन जाये। बिहिर्जगत् शून्य हो जाये, अन्तर्जगत का उद्घाटन हो। यह ध्यान रहे कि **ब्रह्मचर्य का अर्थ वस्तुतः सही-सही मायने में है—'चेतन का भोग।' ब्रह्मचर्य का अर्थ भोग से निवृत्ति नहीं, भोग के साथ एकीकरण और रोग निवृति है।** जिसको आप लोगों ने भोग समझ रखा है वह है रोग का मूल और ब्रह्मचर्य है जीवन का एक मात्र स्त्रोत।

दस साल विगत प्राचीन बात है, एक विदेशी आया था, वह कह रहा था कि ब्रह्मचर्य पूर्वक रहना कठिन है, आप इसे न अपनायें क्योंकि आज के जितने भी वैज्ञानिक हैं उन सबने यह सिद्ध किया है कि भोग के बिना जीवन नहीं है। मैंने भी उन्हें यही समझाया है कि भोग जहाँ पर हैं वहीं पर जीवन है, यह मैं भी मानता हूँ लेकिन जिसे आप लोग समझते हैं उसको मैं भोग नहीं समझता, उसे तो मैं रोग समझता हूँ। **आपके भोग का केन्द्र भौतिक सामग्री है और मेरे भोग की सामग्री बनेगी—'चैतन्य शक्ति'।**

विषय वासना मृत्यु का कारण है, मृत्यु दुःख है, दुःख का कूप है और ब्रह्मचर्य जीवन है, आनन्द है, सुख का कूप है। आप सुख चाहते है, दुःख से निवृत्ति चाहते हैं तो चाहे आज अपनायें, चाहे कल अपनायें, कभी भी अपनायें किन्तु आपको अपनाना यही होगा। रोग की निवृत्ति के लिए औषधपान परमावश्यक होता है। बिना औषधपान के रोग ठीक नहीं हो सकेगा।

भगवान महावीर ने जो चौथा सूत्र ब्रह्मचर्य का दिया है वह बहुत महत्वपूर्ण है, अपने से पूर्ण है। आज तक जितने भी अनन्त सुख के भोक्ता बने हैं उन सबने इसका समादर किया है और जीवन में अपनाया है, अपने जीवन में इसको स्थान दिया है, मुख्य सिंहासन पर विराजमान कराया है, इसे, भोग-सामग्री को नहीं। **ब्रह्मचर्य पूज्य बना किन्तु भोग सामग्री आज तक पूजा नहीं बनी। हाँ ब्रह्मचर्य पूज्य तो आपकी दृष्टि में भी बना किन्तु पूज्य तो भोग–सामग्री की हो रही है आप लोगों के द्वारा, यह एक दयनीय बात है, दुःख की बात है।** जैन साहित्य या अन्य कोई दार्शनिक-साहित्य देखने से विदित होता है कि आत्मा को सही-सही रास्ता तभी मिल सकता है जब कि हम उस साहित्य का अध्ययन, मनन, चिन्तन व मन्थन करें। हम मात्र उसे सुनते हैं। सुनने से पहले यह सोचना होगा कि हम क्यों सुन रहे हैं उसको ? दवाई लेने से पूर्व हम यह निर्णय अवश्य करते हैं कि दवा क्यों ली जाये ? **एक घन्टे यदि श्रवण करते हैं तो मैं समझता हूँ कि इसके लिए कम से कम आठ घन्टे चिन्तन–मनन–मन्थन आवश्यक है।** मैं कैसे खिलाऊँ आप लोंगो को कैसे पिलाऊं आप लोगों को, जबकि आप लोगों की पाचन की ओर दृष्टि ही नहीं है। पाचन की ओर दृष्टि नहीं है, वह पचेगा नहीं तो दुबारा खिलाना ही बेकार चला जायेगा। उस खाये हुये अन्न को मात्र विष्ठा नहीं बनाना है, उसमें से सार-भूत तत्त्व को अपनी जठराग्नि के माध्यम से पकड़ना है। जठराग्नि ही नहीं तो फिर क्या होगा ? संग्रहणी के रोगी को जैसे होता है कि ऊपर से डालते हैं वह नीचे से वैसे ही निकल जाता है, उसी प्रकार आपकी स्थिति है। पर फिर भी कुछ गुंजाइश है, जठराग्नि कुछ उत्तेजित हो जाये और कुछ हजम हो जाये तो ठीक ही है।

उपयोग की धारा को बाहर से अन्दर की ओर लाना है, तभी ब्रह्मचर्य व्रत पालन हो सकता है अथवा यूं कहिये कि उपयोग। की धारा जिस पदार्थ में अटक रही है उस पदार्थ से वह स्थानान्तरित (ट्रांसफर) हो जाये और गहराई तक उतरने लग जाये। चाहे अपनी आत्मा में चले जाये, चाहे दूसरे की आत्मा में चले जाए पर **उपयोग को खुराक मिलनी चाहिए 'आत्मतत्व' की, जड़ नहीं अपितु चैतन्य की ! जहाँ पर बहुत सारी निधियाँ हैं, बहुत सारी संख्या बिछी हुई है। वह सम्पदा उस उपयोग की खुराक बन सकती है, सही–सही मायने में वही खुराक है और इसके लिए हमारे आचार्यो ने बह्मचर्य व्रत पर जोर दिया है, क्योंकि उस आत्मा को एक बार तृप्त करना है जो अनादिकाल से तृप्त है।**

ब्रह्मचर्य का विरोध धर्म है 'काम', इस काम के ऊपर विजय प्राप्त करनी है। यह काम और कोई चीज नहीं है, ध्यान रखिये वही उपयोग है जो कि बहिर्वृत्ति को अपनाता जा रहा है, उसी का नाम है काम। वही उपयोग, जो कि भौतिक सामग्री में अटका हुआ है, वही काम है, महाकाम है, यह अग्नि अनादि काल से जला रही है उस आत्मा को। कामाग्नि बुझे और आत्मा शांत हो। उस कामाग्नि को बुझाने में दुनियाँ का कोई पदार्थ समर्थ नहीं है, बल्कि यह ध्यान रहे कि उस कामाग्नि को प्रदीप्त करने के लिए भौतिक सामग्री घासलेट-तेल का काम करती है। आपको यह आग बुझानी है, या उदीप्त करनी है ? नहीं, नहीं ! बुझानी है, ये चारों ओर जो लपटें धधक रही हैं उसमें से अपने को निकालना है और वहाँ पर पहुँचना है जहाँ चारों ओर लपटें आ रही हैं शांति की, आनन्द की, सुख की। हम यहाँ एक समय के लिए भी आनन्द की श्वाँस नहीं ले रहे है। ऐसे दीर्घ श्वाँस तो निकल रहे हैं जो कि दुःख के, परिश्रम

के प्रतीक है श्वाँस निकल रहे हैं, श्वाँस की गति अवरुद्ध नहीं है, चल रही है, अनाहत चल रही है किन्तु आनन्द के साथ नहीं क्योंकि मृत्यु की स्मृति या मृत्यु का वार्तालाप भी सुनते ही हृदय की गति में परिवर्तन आ जाता है और विषय की, वासनाओं की जो लहर चल रही है उसमें आप रात दिन आपाद कण्ठलीन है, उसी का परिणाम दुःख के साथ श्वांस है, सुख के साथ नही।

इस काम के ऊपर विजय प्राप्त करना है अर्थात् अपने बाहर की ओर जा रहे उपयोग को जो कि भौतिक सामग्री में अटक रहा है उसे आत्मा में लगाना है, चाहे स्वात्मा में, चाहे परमात्मा में, किन्तु आत्मा में लगाना है। आत्मा में नही लगा पाते इसी लिए कामाग्नि धधक रही है।

काम पुरुषार्थ का उल्लेख मिलता है भारतीय साहित्य में। कई लोगो की इस काम-परुषार्थ के बारे में यह दृष्टि रह सकती है कि काम परुषार्थ का अर्थ भोग है। पर लौकिक नहीं चैतन्य का सही-सही मायने में वह काम-परुषार्थ से ही मोक्ष-पुरुषार्थ की ओर जाता है। वह काम-पुरुषार्थ की ओर देखते हुये, उसका अध्ययन करते हुये मोक्ष-पुरुषार्थ में जा सकता है और जाने का कोई रास्ता ही नही है। **लेकिन काम-पुरुषार्थ का अर्थ बाह्य वातावरण में घूमते रहना नहीं लेना चाहिये, काम पुरुषार्थ का अर्थ ही है गहरे उतरना (Deep उतरना)** काम पुरुष अर्थ, तीन शब्दो के योग से 'काम-पुरुषार्थ' यह पद निष्पन्न हुआ है। काम-पुरुषार्थ-अर्थ, काम अर्थात भोग, पुरुष अर्थात् प्रयोजन। परुष के लिए काम आवश्यक है, पुरुष के दर्शन लिए नितान्त आवश्यक है, इसके बिना वहाँ पहुंच नही सकते हम। अर्थात् चैतन्य भोग के बिना हम आत्मा तक पहुंच ही नही सकते। पहुचँना वहीं पर है, पुरुष, तक, पुरुष तक पहुंचने के लिए यह काम (चैतन्य भोग) सहायक तत्व है। आप

लोग पुरुष तक नही पहुंच पाते, पुरुष तक पहुँचने वाले ही पुरुषार्थी होते है और भौतिक सामग्री में ही अटकने वाला गुलाम होता है। आप तो गुलाम है, आप मानो या न मानो, क्योकि जिस व्यक्ति के जीवन का लक्ष्य पुरुष (आत्मा) नही है वह गुलाम तो है ही। जड़ के पीछे पड़ा हुआ व्यक्ति चेतन द्रव्य होते हुए भी जड़ माना जायेगा, इसमें कोई संदेह नहीं है और जो लक्ष्य से पतित हैं वे भटके हुए माने जोयेंगे इसमें कोई सन्देह नहीं है।

काम-पुरुषार्थ को धीरे-धीरे उन्नत करने के लिये यह भारतीय आचार संहिता है जो कि विवाह के ऊपर जोर देता है। कई लोगों की दृष्टि हो सकती है कि विवाह अर्थात ब्रह्मचर्य स्खलित करना किन्तु नहीं। ब्रह्मचर्य के और निकट जाना है, यह शार्टकट है, घुमावदार रास्ता है वहाँ पर जाने के लिये। क्योंकि विवाह की डोरी में बंधने के बाद वह आत्मा फिर चारों ओर से अपने आप को छुड़ा लेता है और उस डोरी के माध्यम से वह आत्मा तक पहुँचने का प्रयास करता हैं। कोई किसी बहाव को देश से देशान्तर ले जाना चाहते हैं तो उसे रास्ता देना होगा तभी वह बहाव वहाँ तक पहुँच पायेगा अन्यथा वह मरुहभूमि में समाप्त हो जायेगा। आप लोगों का उपयोग भी आज तक पुरुष तक इसलिये नहीं पहुँच रहा है कि इस तक बहने के लिये कोई रास्ता आपके पास नहीं है और अनन्तों में जब वह बहने लग जाता है तो वह उपयोग सूख जाता है क्योंकि छद्मस्थों का उपयोग ही तो है। उस उपयोग के लिये, उस झरने के लिये कुछ रास्ता आवश्यक है, अनन्तों से वह रास्ता बन्द हो जाता है तो वह रास्ता सीधा हो जाता है, इसके लिये सही-सही रास्ता आवश्यक है और वही है काम, वही है असली विवाह, जिसके माध्यम से वह वहाँ तक जा सके। आपने विवाह के बारे में सोचा है कुछ आज

तक ? जहाँ तक मैं समझता हूँ इस सभा में ऐसा कोई भी नहीं होगा जो विवाह से परिचित न होगा, लेकिन विवाह के उपरान्त भी वह पुरुष (आत्मा) के पास गया नहीं, इसलिए विवाह केवल एक रूढ़िवाद रह गया है।

विवाह का अर्थ काम-पुरषार्थ है और यह आवश्यक है, किंतु इस विवाह के दो रास्ते हैं-एक गृहस्थाश्रम सम्बन्धी व दूसरा मुनिआश्रम सम्बन्धी। आप लोगों ने उचित यही समझा कि गृहस्थाश्रम का विवाह ही अच्छा है। अनन्त भोग सामग्रियों से आपको मुक्ति मिलनी चाहिये थी किन्तु नहीं मिल पाई। जिस समय विवाह-संस्कार होता है उस समय उस उपयोगवान् आत्मा को संकल्प दिया जाता है पंडितजी के माध्यम से कि अब तुम्हारे लिये संसार में जो स्त्रियाँ हैं वे सब माँ, बहिन और पुत्री के समान है। आपके लिए एकमात्र रास्ता है, इसके माध्यम से चैतन्य तक पहुँचिये आप।

प्रयोगशाला में एक विज्ञान का विद्यार्थी जाता है, प्रयोग करना प्रारम्भ करता है, जिस पर प्रयोग किया जाता है उसकी दृष्टि उसी में गड़ जाती है और वह अपने आपको भूल जाता है, पास पड़ौस को तो भूल ही जाता है, स्वयं को भी भूल जाता है। एक मात्र उपयोग काम करता है, तब वह विज्ञान का विद्यार्थी सफलता प्राप्त करता है, प्रयोग सिद्ध कर लेता है, प्रेक्टीकल के माध्यम से वह विश्वास को दृढ़ कर बना लेता है ऐसा ही प्रयोगशाला है-विवाह। विवाह का अर्थ है दो विज्ञान के विद्यार्थी-पति और पत्नी। पत्नी के लिये प्रयोगशाला पुरुष है पति और पति के लिये प्रयोगशाला स्त्री है, पत्नी है, पत्नी का शरीर नहीं आत्मा ! यह ध्यान रहे कि वे ऊपर से स्त्री व पुरुष है पर अन्दर से दोनों पुरुष हैं (अर्थात् आत्मा हैं)। स्त्रियाँ भी पुरुष के पास जा रही हैं और

पुरुष भी पुरुष के पास जा रहे हैं। दोनों पुरुष है पर ऊपर स्त्री-पुरुष के वेद के भेद हैं। किन्तु वेद के भेद भी वहाँ पर अभेद के रूप में परिणत हो रहे हैं और अभेद की यात्रा प्रारम्भ हो रही है, यह है विवाह की पृष्ठ-भूमि ! अभी तक आप लोगों ने विवाह तो किया होगा पर पति सोचता है पत्नि मेरे लिये भोग-सामग्री है और पत्नि सोचती है पुरुष-पति मेरे लिये भोग-सामग्री है, बस इतना ही समझकर ग्रन्थि बन जाती है, विवाह हो जाता है, बंधन में बंध जाते हैं, इसलिये आनन्द नहीं आता। इसीलिये जैसे-जैसे भौतिक कायायें सूखने लगती हैं, बेल सूखने लगती है, समाप्त प्रायः होने लग जाती हैं तो दोनों एक दूसरे के लिये घृणा के पात्र बन जाते हैं। पति से पत्नी की नहीं बनती और पत्नी से पति की नहीं बनती और बस बीच में एक दीवार खिंच जाती है। वह तो लोक नाता है जिसे निभाते चले जाते हैं, निभता नहीं निभाना पड़ता है क्योंकि अग्नि के समक्ष संकल्प किया था।

दो बैल थे, वे एक गाड़ी में जोत दिये गये। एक किसान गाड़ी को हाँकने लगा। एक बैल पूर्व की ओर जाता हैं तो एक बैल पश्चिम की ओर, बस पेरशानी हो जाती है। बैलों को तो पसीना आता ही है, किसान को भी पसीना आना प्रारम्भ हो जाता, वह सोचता है कि अब गाड़ी आगे नहीं चल पायेगी। यही स्थिति गृहस्थाश्रम की है। आप लोगों का रथ प्रायः कर ऐसा ही हो रहा है। पत्नि एक तरफ खींच रही है तो पति दूसरी तरफ और अन्दर का आत्मा सोच रहा है कि यह क्या मामला हो रहा है ?

आप लोग आदर्श विवाह तो करना चाहते हैं दहेज से परहेज करने के लिये किन्तु आदर्श विवाह के माध्यम से अपने जीवन को आदर्श नहीं बना पाये। इसलिए आपका वह आदर्श विवाह एक मात्र आर्थिक

विकास के लिये कारण बन सकता है किन्तु पारामार्थिक विकास के लिये नहीं बनता।

आदर्श विवाह था राम और सीता का। दोनों ने किस प्रकार उस विवाह के माध्यम से, डोरी के माध्यम से, सम्बन्ध के माध्यम से अपने जीवन को सफलीभूत बनाया। आपको याद रहे कि वह सीता भोग सामग्री थी राम के लिये, राम भोग सामग्री थे सीता के लिए। पर उनकी दृष्टि में अनन्त जो सामग्री बिछी थी चारों ओर वह भोग सामग्री नहीं थी, उस प्रयोगशाला में जो कोई भी पदार्थ इधर-उधर बिखरा हुआ है, विद्यार्थी को उनका कोई ध्यान नहीं रहता उसी प्रकार उन्हें बाहर की वस्तुओं से कोई मतलब नहीं था। उनकी यात्रा अनाहत चल रही है। इसी बीच हजारों स्त्रियों के साथ जीने वाला रावण, एक भूमिगोचरी सीता के ऊपर दृष्टिपात करता है किन्तु सीता की आत्मा के ऊपर दृष्टिपात नहीं करता, सीता की आत्मा तक उनकी दृष्टि नहीं पहुँचती अपितु गोरी-गोरी उस काया की माया में वह डूब जाता है और अपने आपके जीवन को भी वह धो देता है। यह ध्यान रह कि उसकी दृष्टि सीता की आत्मा तक पहुँच जाती तो उसे अवश्य मार्ग मिल जाता, उसका जीवन सुधर जाता। सीता की चर्या के माध्यम से राम का जीवन सुधरा और राम के जीवन के माध्यम से सीता का जीवन सुधरा। वे एक दूसरे के पूरक थे। जैसे कि राह में दो बुड्ढ़े परस्पर एक दूसरे के सहयोग से चलते जाते हैं, गिरते नही हैं। इस प्रकार वे दोनों भी चले जा रहे थे। इधर-उधर उपयोग न भटके इसलिए दृढ़ निश्चय करके एक ही विषय में दो विद्यार्थी जुटे हुए थे, वे-राम और सीता। ज्योंही रावण बीच में आया, तो राम सोचते हैं कि इसके लिए यहाँ पर स्थान नहीं है, हमारे जीवन के बीच में कोई नहीं आ सकता। कोई आता है तो वह

व्यवधान सिद्ध होगा और उस व्यवधान को हम सर्वप्रथम दूर करेंगे। जब तक यह रहेगा तब तक हम दोनों का जीवन एक साथ चल नहीं सकता। फिर भी रावण आता है तो राम कुछ प्रबन्ध करना ही पड़ता है रावण को मारने का इरादा नहीं किया राम ने, मात्र अपने प्रशस्त मार्ग में आने वाले व्यवधान को हटाने का प्रयास किया और सीता के पास जाने का प्रयास किया उन्होनें।

सीताजी ने जिस संकल्प के साथ इस ओर कदम बढ़ाया था उसकी रक्षा करना, समर्थन करना राम का परम धर्म था और राम का समर्थन करना सीता का परम धर्म था। उन दोनों ने धर्म का/अनुपालन किया। भोग का (सांसारिकता का) अनुपालन नहीं भोग (चैतन्य) का सहारा लिया, उसके बिना चल नहीं सकते थे, चलना अनिवार्य था, मन्जिल तक पहुँचना था, इसलिये साथी को अपनाया। यह ध्यान रहे कि **विवाह पद्धति का अर्थ मोक्ष-मार्ग में साथी बनाना है। विवाह का अर्थ संसार मार्ग की सामग्री नहीं है।**

विवाह तो पाश्चात्य शहरों में भी होते हैं पर वहाँ के विवाह विवाह नहीं कहला पाते। वहाँ पर पहले राग होता है और तब बन्धन होता है, यहाँ पहले बन्धन होता है, पीछे राग होता है, और वह राग राग नहीं आत्मानुराग प्रारम्भ होता है। पहले संकल्प दिये जाते हैं फिर बाद में उनके साथ सम्बन्ध होता है, अन्यथा नहीं। इसका अर्थ क्या ? इसका अर्थ बहुत गूढ़ है। जब तक उनका (राम व सीता का) साँसारिक गृहस्थ धर्म चलता रहा तब तक उन्होंने एक दूसरे के पूरक होने के नाते अपने आप के जीवन को चलाया। (अन्त में सीता कहती है कि हमने एम० ए० तो कर लिया अब पी० एचडी० करना है)। स्वयं का शोध करना है। शोध के लिए पर्याप्त बोध मिल चुका है। बोध की चरम सीमा हो

चुकी है। बोध की चरम सीमा होने के उपरान्त की शोध हुआ करता है। एम० ए० का विद्याध्ययन शोध के लिए आवश्यक है, उसके बिना शोध नहीं हो सकता, उसके बाद ही शोध हो सकता है, उस बोध को ही शोध समझ लें तो गलत समझा है, आज यही हो रहा है। शोध करना तो दूर रह जाता है मात्र इतना ही पर्याप्त समझ लेते हैं कि सोहलवीं कक्षा पास कर ली तो हमने बहुत कुछ कर लिया, पर वस्तुतः किया कुछ नहीं। शोध अब प्रारम्भ होगा अपनी तरफ से अनुभूति अब प्रारम्भ होगी। अभी तक अनुभूति नहीं, मात्रा गाइडैन्स मिली है। एम० ए० का अर्थ है दूसरे की गाईडैन्स के माध्यम से अपने आप के बोध को समीचीन बनाना और फिर इसके उपरान्त अनुभूति का अर्थ है—अब किसी प्रकार को टैक्स्ट बुक नहीं है, कोई बन्धन नहीं है, अब शोध करना है।

सीता के पास अब इतनी शक्ति आ चुकी थी कि वह राम से कहती है—अब मुझमें इतनी शक्ति आ चुकी है कि आपकी आवश्यकता नहीं है। अब तीन लोक में जो कोई भी पदार्थ बिखरे हुये हैं, उनमें से किसी भी पदार्थ को निकाल कर उनमें से आत्मा-आत्मा को चुन सकती हूँ, और बोध का विषय बना सकती हूँ। (जैसे कि सामान्य शोध छात्र पुस्तकायल में से अपने विषय प्रयोजन की पुस्तक चुन लेता है) उसके माध्यम से मैं अपनी यात्रा बढ़ा सकती हूँ। अब राम, विश्राम ? अब तुम्हारी कोई आवश्यकता नहीं है। अब स्वावलम्बी जीवन आ गया। वह अब विवाह की डोरी को तोड़ना चाहती है, ध्यान रखना पहले नहीं तोड़ी। विवाह की डोरी तोड़ने के उपरान्त ध्यान रहे कि पूर्व स्थिति पर नहीं रहना है। वह कहती है अब मैं इस पाठशाला में नहीं रहूंगी, ऊपर उठूंगी औ पंचमुष्ठि केश लुन्चन कर लेती है राम अभी शोध छात्र नहीं थे, अतः वे प्रणिपात हो गये उसके चरणों में। जिन्होंने विषय चुन लिया,

शोध छात्र बन गया, ऊपर उठ गया वह अब विद्यार्थी नहीं, छात्र तो इसलिए मान लिया जाता है कि वह अभी भी कुछ कर रहा है। अब वह स्नातक से भी ऊपर उठ चुका है, अब वह विद्यार्थी नहीं है, कहो भले ही उसे। पर वह अब मास्टर बन गया है। राम ने अभी इतना साहस नहीं किया था इसलिए उन्होंने सीता के चरणों में प्रणिपात किया और अपने आप को कमजोर महसूस करने लगे कि देखो वह एक अवला होकर भी शोध छात्रा बन गई। अब यह विश्व में बिखरी चैतन्य सत्ताओं के बारे में विचार करेगी, अध्ययन करेगी और उनके पास पहुँचने का प्रयास करेगी।

उस विवाह के माध्यम से, मात्र राम में, जब उस सीता ने संकल्प किया, राम को प्रयोगशाला बनाया तब उसमें यह साहस उद्‌भूत हो गया कि बिना राम के भी काम चल सकता है।

राम-राम, श्याम-श्याम, रटन्त के विश्राम।
रहे न काम से काम, तब मिले आतम राम।।

अब राम राम न रहे सीता की दृष्टि में, अब दृष्टि में था आतमराम या जगतराम। प्रत्येक काया में छिपे हुये आतमराम को वह टटोलेगी, उन सब के साथ सम्बन्ध रखेगी, विश्व के साथ एक प्रकार से भोग यात्राा प्रारम्भ हो गई। लेकिन ध्यान रहे अब आतमराम के साथ भोग है, राम के साथ नहीं। राम उस काया का नाम था, आतमराम काया का नाम नहीं हैं। उस अन्तर्यामी चैतन्य सत्ता में न पुरुष है, न स्त्री है, न नपुंसक है, न बुड्ढा है, न बालक है, न जवान है, उसमें देव नहीं, नारकी नहीं, तिर्यच नहीं पशु नहीं वह केवल आतमराम। चारों और आतमराम। वह सीता चल पड़ी, अकेली चल पड़ी। सीता की आत्मा कितने जबर्दस्त बल को प्राप्त कर चुकी। अब वह किसी की परवाह नहीं करती। अब

वह अबला नहीं है, सबला है। उसके चरणों में अब राम प्रणिपात कर रहे थे, इस समय वे अबला थे और सीता सबला थी।

वह ऊपर उठ चुकी थी। राम उससे कहते है कि ठहरो, मैं भी आ जाऊँ। सीता पूछती है कहाँ आ जाऊँ ? तुम्हारे साथ ! किसलिए ? दोंनों घर में रहे, बाद में मार्ग चुन लेंगे ! सीता कहती है—अरे ! अब घर में रहने की कोई आवश्यकता ही नहीं है, मैं जब विद्यार्थी थी तब तक ठीक था, अब मैं विद्यार्थी से ऊपर उठ चुकी हूँ। अब आपकी कोई आवश्यकता नहीं, आपको धन्यवाद देती हूँ कि आपने एम० ए० तक मेरा साथ नहीं छोड़ा, धन्यवाद बहुत धन्यवाद। पर अब पैरों में बहुत बल आ चुका है, आँखों को दृष्टि मिल चुकी है, अब मैं अनाहत जा सकती हूँ, अब कोई परवाह नहीं, राह मिल चुकी है।

राम ने अग्नि परीक्षा के बाद कहा था कि चलो प्रिये, घर चलो। वह अग्नि परीक्षा ही सीता के लिए मैं समझता हूँ स्नातक परीक्षा थी, वह उसमें सफल हो जाती है। वह राम से आगे निकल गई। राम ने बहुत कहा अभी मत जाओ। सीता कहती है—तुम पीछे आ जाओ, पर मैं अब नहीं रूक सकती, साथ नहीं रह सकती। साथ रहने पर बिखरे हुये विषय का संग्रह नहीं कर सकूँगी। इस लिए आप अपना विषय अपनायें और मैं अपना विषय अपनाती हूँ। अब आप मेरी दृष्टि में राम नहीं है आतमराम है।

इस प्रकार लिंग का विच्छेद करके, वेद का विच्छेद करके, यह अभेद यात्रा में चली गई, यह घड़ी उसकी आत्मा की अपनी घड़ी थी। उसी दिन उसके लिए मोक्ष-पुरुषार्थ की भूमिका बन गई। यह काम पुरुषार्थ का ही सुफल था कि वह मोक्ष-पुरुषार्थ में लीन थी। अब वह मोक्ष-पुरुषार्थी थी. काम-पुरुषार्थी नहीं।

राम ने सोचा कि—क्या मैं कमजोर हूँ ? उन्हें अवला से शिक्षण मिल गया। वे भी शोध छात्र बन गये। सीता को मालूम न था कि ये मुझसे भी आगे। बढ़ जायेंगे। **स्पर्धा ऐसी बातों में करनी चाहिए। आप लोग कमाने में, भौतिक सामग्री जुटाने में स्पर्धा करते हैं, ये आविष्कार हुआ, ये परिष्कार हुआ, लेकिन अन्दर क्या आविष्कार हुआ, यह तो देखो, अपने आपके ऊपर डाक्टरेट की उपाधि तो प्राप्त कर लो। स्वयं पर नियन्त्रण नहीं है स्वयं के बारे में गहरा (Deep) ज्ञान है तो मैं समझता हूँ कि भौतिक ज्ञान भी आपका सीमित है।** मात्र दूसरे ने जो कुछ कहा उसी को नोट कर लिया, पढ़ लिया। अन्दर ज्ञान के स्त्रोत है—वहाँ पर देखो, चिन्तन के माध्यम से देखो कितने-कितने खजाने भरे हुये है वहाँ पर, घुसते चले जाओ, अनन्त सम्पदा भरी पड़ी है, वह अनन्त कालीन सम्पदा लुप्त है, गुप्त है, आप सोये हुये हैं, वह सम्पदा नजर नहीं आ रही।

जब राम को सीता से प्रेरणा मिल जाती है, तब राम ने निश्चय कर लिया कि मुझे भी अब कॉलेज की कोई आवश्यकता नहीं, अब तो मैं भी ऊपर उठ जाऊँ। आप लोगों का जीवन कॉलेज में ही व्यतीत हो जाता है। शिक्षण जब लेते हो तब भी कॉलेज की आवश्यकता है और उसके उपरान्त अर्थ-प्रलोभन आपके ऊपर ऐसा हावी हो जाता है कि पुनः उस कॉलेज में आप को नौकरी कर लेनी पड़ती है। पहले विद्यार्थी के रूप में, अब विद्यार्थियों को पढ़ाने के रूप में, स्वयं के लिए कुछ नहीं है। उसी कॉलेज में जन्म और उसी में अन्त, यही मुश्किल है। डाक्टरेट कर ही नहीं पाते एक बार स्वयं पर (Self पर), दूसरों पर नहीं, अपने आप पर अध्ययन करो।

राम ने संकल्प ले लिया और दिगम्बर दीक्षा ले ली। अब राम की दृष्टि में कोई सीता नहीं रही न कोई लक्ष्मण रहा। वे भी आतमराम में लीन हो गये। यह काम पुरुषार्थ (आत्मा के लिए चैतन्य का भोग, काम पुरुषार्थ) की ही देन थी। मोक्ष-पुरुषार्थ में भर्ती कराने का साहस काम पुरुषार्थ की ही देन है। वह काम-पुरुषार्थ भारतीय परम्परा के अनुरूप हो तो मोक्ष-पुरुषार्थ की ओर दृष्टि जा सकती है, आपके कदम उस ओर उठ सकते हैं। जब दृष्टि नहीं जायेगी तो कदम उस ओर उठ सकते हैं। जब दृष्टि नहीं जायेगी तो कदम उठ नहीं पायेंगे। विवाह तो आप कर लेते हैं किन्तु आपको अभी वह राह नहीं मिल पाई। **भारत में पहले बन्धन है फिर राग है, वह राग–वीतराग बनने के लिए है। इसमें एक ही साथ सम्बन्ध रहा है, अनन्त के साथ नहीं, अनन्त के साथ तो बाद में, सर्वज्ञ होने पर। पहले सीमित विषय फिर अनन्त। जो प्रारम्भ से ही अनन्त में अधिक उलझता है उसका किसी विषय पर अधिकार नहीं हो पाता।**

आज पाश्चात्य समाज की स्थिति है कि एक व्यक्ति दूसरे पर विश्वास नहीं करता, प्रेम नहीं करता, वात्सल्य नहीं करता। एक दूसरे की सुरक्षा के भाव वहाँ पर नहीं है। भौतिक सम्पदा में सुरक्षा नहीं हुआ करती, आत्मिक सम्पदा में ही सुरक्षा हुआ करती है।

विवाह के पश्चात् यहाँ आपका (भारतीय परम्परानुसार) विकास प्रारम्भ होता है और वहाँ (पाश्चात्य देशों में) विनाश। वह धारा इधर भी बहकर आ रही है।

राम और सीता ने विवाह को, काम-पुरुषार्थ को अपनाया, उसे निभाया, उसी का फल मानता हूँ कि राम तो मुक्ति का वरण कर चुके और स्वआनन्द का अनुभव कर रहे हैं और सीता सोलहवें स्वर्ग में

विराजमान है। वह भी गणधर परमेष्ठी **बनेगी और मुक्तिगामी होगी।** हम इस कथा को सुनते मात्र हैं इसकी गहराई तक **नहीं** पहुँचते।

काम पुरुषार्थ। काम—सम्बन्ध, भोग, किन्तु पुरुष के लिए आत्मा के लिए भोग चैतन्य का। आप पुरुष तक नहीं पहुँचते, शरीर में ही अटक जाते हैं, रंग में ही दग रह जाते हैं, वहिरंग में ही रह जाते है, अन्तरंग में नहीं उतरते। आत्मा के साथ भोग करो, आत्मा के साथ मिलन करो, आत्मा के साथ सम्बन्ध करो।

अभी कुछ देर पूर्व यहाँ मेरा परिचय दिया पर वह मेरा परिचय कहा था, आत्मा का कहाँ था ? **मेरा परिचय देने वाला वही, हो सकता है जो मेरे अन्दर आ जाये जहाँ मैं बैठा हूँ। सिंहासन पर नहीं, सिंहासन पर शरीर बैठा है। आप की दृष्टि वहीं तक जा पाती हैं, आपकी पहुँच भौतिक काया तक ही जा पाती है। मेरा सही परिचय है— मैं चैतन्य-पुन्ज हूँ जो इस भौतिक शरीर में बैठा हुआ है।** यह ऊपर जो अज्ञान दशा में जो मल चिपक गया है उसको हटाने में मैं रत हूँ, उद्यत हूँ, मैं चाहता हूँ कि मेरे ऊपर का कवच निकल जाये और साक्षात्कार हो जाये इस आत्मा का, परमात्मा का, अन्तरात्मा का। आपके पास कैमरे हैं फोटो उतारने के, मेरे पास एक्सरे है। **कैमरे के माध्यम से ऊपर की शक्ल ही आयेगी और एक्सरे के माध्यम से अन्तरंग आयेगा क्योंकि अन्तरंग को पकड़ने की शक्ति एक्सरे में है और बाह्यरूप को पकड़ने की शक्ति कैमरे में है।** आप कैमरे के शौकीन हैं, मैं एक्सरे का शौकीन हूँ। अपनी-अपनी अभिरुचि है। एक बार एक्सरे के शौकीन बनकर देखो, एक बार बन जाओगे तो लक्ष्य पर पहुँच जाओगे। मैं चाहता हूँ कि हम उस यन्त्र को पहचानें, ग्रहण करें, उसके माध्यम से अन्दर जो तेजोमय आत्मा अनादिकाल से बैठी है, विद्यमान है, वह पकड़ में आ जाये।

लेकिन ध्यान रखना एक्सरे की कीमत बहुत होती है। प्रत्येक व्यक्ति गले में कैमरा लटका सकता है पर एक्सरे यन्त्र नहीं। एक बार एक्सरे से आत्मा को पकड़ लें बस। कैमरे से उतारा गया ढ़ांचा बदल सकता है, शरीर बदल सकते हैं पर एक्सरे से उतारी गई आत्मा नहीं बदल सकती। अनन्तकाल व्यतीत हो चुका है। व्यर्थ में, पर हम लक्ष्य तक नहीं पहुँचे—

✣ दिये चाम चादर मढ़ी हाड़ पींजरा देह।
भीतर या सम जगत् में और नहीं घिनगेह।।

आपके पास तो घिनावने पदार्थ पकड़ने की ही मशीन है और सुगन्धित, जहाँ किसी प्रकार के घिनावने पदार्थ नही है, वह एक मात्र आत्मा है, वह हमें मिल सकती है जब हमारी दृष्टि अर्न्तदृष्टि हो जाये।

जब राम ने मुनि दीक्षा धारण कर ली, घोर तपस्या में लीन हो गये तो इतनी अर्न्तदृष्टि बन चुकी थी कि बाहर क्या हो रहा है उन्हें पता ही नहीं। प्रतीन्द्र के रूप में सीता का जीव सोचता है। कि-अरे ! इन्होंने तो सीधा (Direct) रास्ता अपना लिया मुझे तो स्टेशन पर रुकना पड़ा ये लक्ष्य तक पहुँचने वाले हैं। सीता ने सोचा कि राम डिगते हैं कि नहीं, उसने डिगाने का प्रयास किया पर राम डिगें नहीं। उन्हें फिर बाहरी पदार्थों ने प्रभावित नहीं किया। इसी को कहते हैं ब्रह्मचर्य। **अपनी आत्मा में रमण करना ही ब्रह्मचर्य है।**

इस ब्रह्मचर्य के सामने विश्व का मस्तक नत-मस्तक हो जाता है, इसमें कोई संदेह नहीं। उस दिव्य तत्त्व के सामने सांसारिक कोई भी मौलिकता नहीं रखते, उनका कोई मूल्य नहीं है। इसलिये मैं उस दिव्य ब्रह्मचर्य धर्म की वन्दना करते हुये आप लोगों को यही कहूँगा कि आप लोग कैमरे को छोड़ दें और एक्सरे के पीछे लग जायें, अन्दर घुस जायें,

कोई परवाह नहीं कि बाहर क्या हो रहा है ? बाहर कुछ भी नहीं होगा। अन्दर ही जो होगा उसे देखोगे तो बाहर कुछ घट भी जाये तो उसका प्रभाव अपने ऊपर नहीं पड़ेगा क्योंकि वह सुरक्षित आत्मद्रव्य है। बाहर कुछ भी कर लो, आत्मा इस प्रकार का टैंक है कि जिसके ऊपर किसी भी प्रकार का गोला-बारूद असर नहीं करता वह अन्दर का व्यक्ति सुरक्षित रहता है किंतु वह बाहर आ जाये तो स्थिति बिगड़ जाती है। बाहर लू चलती है पर अन्दर शांति की लहरें चल रही है। उस अन्तरात्मा में लीन होने वाले व्यक्ति के चरणों में कौन नहीं नत-मस्तक होगा ? अवश्य नमस्कार करेंगे। लेकिन हम नमस्कार करके भी अपना उद्देश्य वह नहीं बना पाते कि हमें भी उस शांत लहर का अनुभव करना है, वह शांति की अनुभूति अनन्तकाल में नहीं हुई है। ऐसी बात नहीं है कि हो भी नहीं सकती, हो सकती है लेकिन दृष्टि अन्दर जाये तो।

काम-पुरुषार्थ को आप मात्र भोग मत मानो, वह भोग पुरुष के लिए है, आत्मा के लिए है। वास्तविक भोग वहीं है जो चैतन्य के साथ हुआ करता है। जब सर्वज्ञ बन जाते हैं, उस समय अनन्त चैतन्य के साथ मेल हो जाता है। उस मेल में कितनी अनुभूति, कितनी शांति मिलती होगी, यह वे ही कह सकते हैं, हम नहीं कह सकते। मात्र कुछ बिन्दु हमें उसके मिल जाते हैं (ध्यान के समय) तो हम आनन्द विभोर हो जाते हैं तो उस अनन्त-सिंधु में गोता मारने वाले के सुख की कोई सीमा नहीं हैं। असीम है उसका सुख, असीम है वह शांति, असीम है वह आनन्द। वह आनन्द अपने को मिले इसलिए पुरुषार्थ करना है।

मुनिराज भी निर्भोगी नहीं होता, वह भी भोगी होता है किन्तु वह चैतन्य का भोक्ता बनता है, पांच इन्द्रियों के लिये यथोचित विषय देता है किन्तु राग पूर्वक नहीं, भोग की दृष्टि से नहीं अपितु योग की

साधना की दृष्टि से—

✣ ले तप बढ़ायन हेतु नहीं।
तन पोसते तज रसन को।।

विषय और भोग, (काम) मात्र संपोषण की दृष्टि से माने गये हैं, किन्तु जब वह दृष्टि हट जाती है तो उन्हीं पदार्थों के माध्यम से हमें मोक्ष-पुरुषार्थ साधना करने में वे कार्यकारी हो जाते हैं। **मुनिराज के द्वारा इन्द्रिय विषय (निद्रा भोजन आदि) ग्रहण किये जाते हैं पर वे विषय–पोषण की दृष्टि से नहीं होते, मात्र शोषण नहीं रहता। पोषण व शोषण के बीच की धारा योग पास रहती है, जिसमें शरीर के साथ सम्बन्ध छूटता भी नहीं है, टूटता भी नहीं है और मात्र शरीर के साथ भी सम्बन्ध नहीं रहता। किन्तु चैतन्य के साथ सम्बंध रहता है। मुनिराज का शरीर के साथ सम्बंध चैतन्य खुराक के साथ रहता है।**

(सवारी तभी आगे बढ़ेगी जब उसमें पेट्रोल डालेंगे। आप लोग भी इस काम पुरुषार्थ के माध्यम से मोक्ष-पुरुषार्थ की ओर बढ़े और अनन्त सुख की उपलब्धि करें यही कामना है)।

(मुझे जो यह इस प्रकार ज्ञान की, साधना की थोड़ी सी ज्योति मिली है वह पूर्वाचार्यों से (पूज्य गुरुवर श्री ज्ञानसागर जी महाराज से) मिली है। हम पूर्वाचार्यों के उपकार को भुला नहीं सकते। वैषयिक दृष्टि को भूलकर विवेक दृष्टि से इनके उपकारों को देखो, इनके द्वारा बताये कर्त्तव्यों की ओर अपनी दृष्टिपात करो कि इनका सन्देश किसलिये है ? स्वआत्मपुरुषार्थ के साथ उनके उपदेश आप लोगों के उत्थान के लिये है किन्तु उनका अपनी आत्मा में रमण स्वयं के कल्याण के लिये था। कोई भी व्यक्ति जब स्वहित चाहता है और उसका हित हो जाता है

तो उसकी दृष्टि अवश्य दूसरे की ओर जाती है, इसमें कोई सन्देह नहीं। उन्होंने सोचा कि ये भी मेरे जैसे दुःखी हैं, इनको भी रास्ता मिल जाये। आचार्यों को जब ऐसा विकल्प हुआ तो उन्होंने उसके वशीभूत होकर प्राणियों के कल्याण के लिए मार्ग सुझाया। भगवत् तुल्य महान् कुन्दकुन्द आचार्य ने उस विकल्प का सदुपयोग किया और महान् अध्यात्मसाहित्य का सृजन किया और आज हमारे जैसे भौतिक चकाचौंध के युग में रहते हुये भी कुछ कदम उस ओर उठ रहे हैं तो मैं समझता हूँ कि बहिर्निमित्त से वे आचार्य कुन्दकुन्द और आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज आदि पूर्वाचार्य हुये उनका ऋण हम पर है पर उनके प्रति हमारा यही परम कर्त्तव्य है कि उस दिशा के माध्यम से अपनी दिशा बदलें और दशा बदलें/अपने जीवन में उन्नित का मार्ग प्राप्त करें, सुख का भाजन बनें और इस परम्परा का अक्षुण्ण बनायें रखें ताकि आगे आने वाले प्राणियों के लिये भी वह उपलब्ध हो सके। आचार्य कुन्दकुन्द की स्मृति के साथ में आज का वक्तव्य समाप्त करता हूँ—

कुन्दकुन्द को नित नमो-
हृदय कुन्द खिल जाये।
परम सुगन्धित महक में-
जीवन मम घुल जाये।।

॥ भगवान महावीर की जय ॥

आदर्श कौन..... ?

★ रत्नत्रय वह अमूल्य निधि है जिसकी तुलना संसार की समस्त सम्पदा से भी नहीं की जा सकती।

★ धर्म का सम्बन्ध देहाश्रित कम हुआ करता है बल्कि ! आत्माश्रित ज्यादा हुआ करता है।

★ मैं तुम्हारे अन्दर में रहने वाला प्राणी जरूर हूँ। लेकिन ! मेरा प्रण है कि अन्याय करने वाले को कभी नही छोड़ूंगा, चाहे भले ही मेरे प्राण चले जायें।

★★★ आचार्य श्री समन्तभद्र स्वामी द्वारा विरचित रत्न करण्डक श्रावकाचार है, जो कि श्रावको के लिए एक संजीवनी बूटी है। जिसके द्वारा श्रावको की सब बीमारियाँ समाप्त हो जाती है। कहने को तो कह देते है कि श्रावकाचार है, किन्तु ! समन्तभद्र स्वामी ने इसे 'रत्नकरण्डक' माना है। मैं आप लागों से यह पूछना चाहता हूँ कि आप लोगो के यहां, शक्ति अनुसार बहुमूल्य पदार्थो का सग्रंह हुआ करता है। किसी के पास हीरे, माणिक्य, सोना रह सकता है, किन्तु ! उनको आप कहां पर रखते है। दो मिनिट में मैं इस प्रसंग को समाप्त करना चाहूँगा। आप उन बहुमूल्य पदार्थो को ट्रेजरी में रखने है, और उसमें अलीगढ़ कम्पनी वाला, एक अच्छा बड़ा सा ताला लगाते है। और चाबी अपने पास रखते है, ताकि ! उन्हे कोई निकाल न सके।

ट्रेजरी में रखकर भी क्या आप उन्हे ऐसे ही रख देते है ? नहीं ट्रेजरी के अन्दर एक अन्ड़र ग्राउंड़ रहता है। उसमें भी एक और पेटी रहती है, उस पेटी में भी एक छोटी सी पेटी रहती है, इन सब पेटियों के ऊपर

पुनः छोटे-छोटे ताले लगे रहते है, और ध्यान रखिये ! अन्तिम जो पेटी है, उस पेटी में एक डिब्बा रहता है। उस डिब्बे में एक और डिबिया रहती है, उस डिबिया में पुडिया रहती है और अनेक प्रकार के कागजों की अन्दर-अन्दर और भी पुड़िया है, अन्तिम जो पुड़िया है उसमें जिस वर्ण के रंग का नग है, हीरा है, उससे विपरित रंग का कागज रहता है। मान लीजिए ! नीलम का एक नग है तो उसके लिए अच्छे लाल-लाल कागज में रखते है।

जब पुड़ियाँ पर पुड़ियाँ खोलते चले जाते है, तब कहीं जाकर वह नग दिखाई देता है। उस नग को आप अपने हाथ भी नही लगाते, दूर से ही ग्राहक को दिखाते है। इस प्रकार आप अपने नग की सुरक्षा करते है, एक की सुरक्षा के लिए और शोभा के लिए इतना प्रबन्ध हुआ करता है। आचार्य श्री समन्तभद्र स्वामी ने इस ग्रन्थ में तीन वस्तुओ का वर्णन किया है। सम्यग्दर्शन, सम्यज्ञान, और सम्यक्चारित्र, इन तीन वस्तुओं की तुलना संसार की समस्त सम्पदा से भी नहीं कर सकते है। दो वस्तुओं को तो रहने दीजिए, लेकिन ! मात्र सम्यग्दर्शन की तुलना भी हम अन्य संम्पदा से नही कर सकतें। त्रैलोक्य में, तीन काल में, सम्यग्दर्शन के अलावा हितकारी अन्य कोई वस्तु नहीं हैं ये वस्तुएँ एक से बढ़कर एक हैं जिन्हें आप दुनियाँ में कहीं भी चले जाओ, किसी दुकान में चले जाओ, आप खरीद नहीं सकते। सुनना तो दूर रहा, ऐसी यह मौलिक वस्तुऐं हैं, रत्न हैं जिनकी प्राप्ति के लिए उन्होंने १५० श्लोकों की रचना की है।

रत्न करण्डक श्रावकाचार का अर्थ केवल चारित्र पर आचार संहिता या मात्र क्रिया काण्ड वाली बात नहीं है। इस युग में समन्तभद्र एक ऐसे आचार्य हुए हैं, जो भगवान की परीक्षा करने वाले थे। ऐसे आचार्य भिन्न-भिन्न महान ग्रन्थों की रचना करते-करते क्रिया काण्ड की बात कह कर के चले जाए, यह संभव नहीं है। बल्कि ! उन्होंने इस ग्रन्थ में जो अपना अनुभव किया हैं, वह अलौकिक है।

यदि आप मुनि नहीं बन सकते हो, तो कोई बात नहीं, किन्तु रत्नकरण्डक श्रावकाचार के अनुरूप अपनी चर्या तो बना लीजिए। यदि आपने वैसी चर्या बना ली तो समन्तभद्राचार्य डंके की चोट कहते है, कि कौन कह सकता है, कि यह प्राणी संसार में दीर्घकाल तक चलेगा। और कोई कह सकता है कि यह संसारी रहेगा, किन्तु ! यह अग्रगण्य रहेगा, प्रतिमा स्थानों में उसकी उन्नति होगी, शारीरिक सुड़ोलता की अपेक्षा भी उन्नति होगी। हुकूमत (सत्ता) की प्राप्ति, मंत्री, राजा, महाराजा, आदि उच्च पदों की उपलब्धि ऐसे हुआ करती है, जैसे किसी को अस्पताल में या बाजार में चश्मा खरीदने के उपरान्त उस के साथ-साथ क्या मिल जाता है, चश्मा रखने का कवर और यदि वह भी नहीं तो काँच को पोंछने के लिए मुलायम मखमल का कपड़ा तो मिल ही जाता है यह अपने आप नहीं मिलता किन्तु ! उसके साथ जुड़ी हुई जो वस्तु है उसके साथ मिलता है। उसी प्रकार सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र जिसके पास है, वह फिर कभी संसार में भिखमंगा नहीं रह सकता। वह किमिच्छक दान देने की क्षमता रखता है। किमिच्छक दान किसे कहते है ? चक्रवर्ती जब दिग्विजय करके आता है तो सारी की सारी प्रजा यह इच्छा रखती है, कि प्रभु ! आ रहे हैं बहुत कुछ दान हमें देंगे।

चक्रवर्ती के पास लोग हाथ जोड़ कर चले जाते हैं, और जाते ही चक्रवर्ती सबकी झोली भर देता है। जो जिस वस्तु को चाहता है वह उसे मिल जाती है। इसको कहते हैं किमिच्छक दान। तो केवल क्रिया काण्ड की रचना समन्तभद्राचार्यजी ने नहीं की किन्तु रत्नत्रय की स्तुति की है। रत्नकरण्डक श्रावकाचार में इन तीनों रत्नों को उन्होंने किस प्रकार रखा यह मैं कह रहा हूँ। आपने इन लौकिक रत्नों को जिनको

लाख दो लाख रुपये, जो भी कीमत है, उन्हें हजार, दो हजार रुपये वाली ट्रेजरी में रख दिया, किन्तु सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूपी रत्नों को किसमें रखा है। तो समन्त भद्राचार्य कहते हैं कि भैया ! तीन लोक में ऐसे रत्न सरलता से नहीं मिलते, तो फिर उन्हें रखने के लिए कौन भी डिबिया चाहिये ? बढ़िया से बढ़िया आत्मा रूपी करण्ड चाहिए। मतलब ? मतलब यह है कि आप लोगों ने रत्न ही नहीं देखे हैं। तो करण्डक कहां से देखेंगे। रत्नत्रय का बहुमान कितना है ? ये रत्न कितनी कठिनता से प्राप्त होते हैं, इस बात को सोचे बिना आजकल हवा ऐसी चल रही है कि कोई चारित्र, चरित्र की चर्चा करता जा रहा है। तो कोई मात्र सम्यग्दर्शन, अथवा सम्यग्ज्ञान की चर्चा कर रहा है।

समन्तभद्राचार्य कहते हैं कि मोक्ष मार्ग इन तीनों की एकता में ही होगा, मात्र एक में ही नहीं। मोक्ष मार्ग वही है जो मुक्ति तक पहुँचा दें, इसलिए उन्होंने इसका नाम धर्म कहा है। ऐसे धर्म रूपी रत्नत्रय को नीचे नहीं रखना चाहिए। इस जगत में रत्नत्रय के बिना कोई साधन नहीं है, भगवान के पास भी चले जाओ, तो भगवान भी रक्षा नहीं कर सकेंगे। हमारी रक्षा इन तीनों रत्नों के द्वारा ही होने वाली है। वह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र का वर्णन करनेवाला रत्नकरकण्कड श्रावकचार मात्र क्रियाकाण्ड वाला ग्रन्थ नहीं है, बल्कि ! भिन्न-भिन्न हो क्रिया काण्ड है उनसे छुड़ाने वाला यह ग्रन्थ है। कौन सी क्रिया समीचीन है, और कौन सी क्रिया असमीचीन है, इन सब बातों का ज्ञान हम इस रत्नकरण्डक श्रावकाचार के माध्यम से कर सकते हैं।

श्रावकों का यह परम कर्त्तव्य होता है कि यह जो १५० श्लोक प्रमाण रत्नकरण्डक श्रावकाचार है, इसका पठन पाठन हमेशा करें। हमें यह भी ज्ञान नहीं है कि हमारा ज्ञान कहा तक बढ़ सकता है। हमें यह भी

बोध नहीं है कि हमारे पास कितना चारित्र होना चाहिए ? हमें यह भी ख्याल नहीं है कि दूसरे के प्रति हमारा कैसा व्यवहार हो ? यह सब सिखाता रत्नकरण्डक श्रावकाचार जो व्यक्ति स्वयं नहीं चल सकता, वह जो गिरा हुआ है उसको कैसे उठा सकेगा ? और यदि उठाता भी है तो उसका कोई महत्व नहीं है। आचार्य कहते हैं कि जो स्वयं बलिष्ठ है, स्थिर है, लेकिन ! जिनके पास बल नहीं है, ज्ञान की अपेक्षा विश्वास की अपेक्षा चारित्र में दृढ़ता नहीं उन्हें वह उस स्थान तक ले आए जहाँ पर वह है। सम्यक्त्व के आठ अंगों में, प्रभावना अंग के बारे में उन्होंने कहा है—

✣ अज्ञानतिमिख्याप्ति, मपाकृत्य यथा यथम्।
जिन शासन माहात्म्य प्रकाशः स्यात्प्रभावना।।

अज्ञान रूपी अन्धकार के विस्तार को हटाकर जिन शासन का माहत्म्य यथाशक्ति प्रगट करना प्रभावना अंग है। अज्ञान एक घने अन्धकार के समान है, जिस किसी व्यक्ति के जीवन में ऐसा अन्धकार आ जाए तो उसे हटाने में समर्थ वह कौन सा सम्यग्दर्शन है, जिसका ज्ञान हमें आज तक नहीं रहा है। पथ क्या है ? पाथेय क्या है ? इसकी हमें पहचान नहीं है। जिस वस्तु की कमी है, उसकी पूर्ति करा देना, यही तात्कालिक प्रभावना मानी जाती है। उसको न करके यदि हम बातें मात्र करते जाए, तो कुछ भी नहीं होने वाला।

इस दिशा में जैन समाज का बहुत ही शिथलाचार चल रहा है। लेकिन ! विशेष रूप से यह बात खटकती रहती है, कि हमारे आचारों में भी इतनी शिथिलता आती जा रही है, उसे शब्दों में नहीं कहा जा सकता। यदि इस समय समन्तभद्राचार्य होते, तो वे यही कहते कि अब

श्रावकों के लिए कोई दूसरा श्रावकाचार लिखने की जरूरत है, ताकि ! यह वर्तमान के नामधारी श्रावकों के लिए एक नया बोध दे। गृहस्थ श्रावक की महिमा बताते हुए वे कहते है :—

✣ गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो, निर्मोहो नैव मोहवान्।
अनगारो गृही श्रेयान्, निर्मोहो मोहिनी-मुनेः।।

सम्यग्दर्शन के प्रकरण में यह श्लोक आया है इसमें मुनि को ऐसा पटक दिया.....ऐसा पटक दिया कि कुछ पूछो मत ! यह समझ में नहीं आता कि ऐसा क्यों किया ? बिलकुल ठीक है, जो व्यक्ति अपनी भूमिका का निर्वाह नहीं करता तो वह व्यक्तिस्वयं गिर जाएगा, उठने का कोई उपाय ही नहीं चौपात पर आप साईकिल पर जा रहे है जाते-जाते साईकिल सिलिप हो गई, और आप धड़ाम से नीचे गिर गए और चौपात की बात है। चौपात है कितने लोग देखेंगे, सभी लोग देखेंगे वहां पर आप यह नहीं देखते कि पैर में लग गया है, कि नहीं लगा, खून बह रहा है, कि नहीं बह रहा। और बिना देखे ही किसी ने देखा तो नहीं, यहाँ वहाँ देखकर जल्दी से साईकिल उठाकर भाग जाते है। मान लो ! कोई कहता भी है कि अरे ! भैया लग गई वह कहता है कि नहीं नहीं।

ऐसा क्यों होता है ? यह मर्यादा है, गिरना अच्छा नहीं माना जाता। वह भीतर से गिरना अच्छा नहीं समझता इसलिए लगी हुई चोट पर भी ध्यान नहीं देता है। उसी प्रकार आचार्य कहते है, यदि कोई मुनि लिंग धारण कर ले और मोही बन जाए, तो यहाँ पर कहने का मतलब यह है कि निर्मोहोवस्था तो प्राप्त करने के लिए यह साधना थी। लेकिन ! निर्मोहोवस्था तो प्राप्त नहीं हुई, और वह उलझ गया। मोह में माया जाल में फँस गया। तब उसके सामने उस गृहस्थ को लाकर रख देते

है जो निर्मोही है। और कह देते है कि अरे ! तेरे से तो अच्छा यह गृहस्थ है जो कर्त्तव्य पर डटा है। लेकिन ! समन्तभद्र महाराज ने ऐसा कहीं भी नहीं लिखा कि फिर तुम उस गृहस्थ की पूजा करो, यहाँ तक कहा है, कि यदि गृहस्थ है, श्रुत में पारंगत भी है, तो भी उसकी छाया मत पड़ने दीजिए अपने ऊपर ऐसा क्यों कहा ? गृहस्थ है क्षायिक सम्यग्दृष्टि भी हो सकता है, ज्ञान भी है, और मुनि के पास तो है ही नहीं। तब फिर वह मुनि जाए उस गृहस्थ के पास और उसकी पूजा करे, नहीं फिर आपने तो कह दिया की मोक्षमार्गी की पूजा करनी चाहिए। वह गृहस्थ मोक्ष मार्गी है, और साधु तो मोक्षमार्गी नहीं रहा, इसलिए गृहस्थ की तो पूजा करनी चाहिए किन्तु नहीं.....नहीं मेरा कहना तो यह है कि अरे ! निर्मोहपने को प्राप्त कर ले, और उस मोही गृहस्थ के पास तीन काल में नहीं जाना। अभी तो आप गृहस्थ को मोक्षमार्गी कह रहे थे और अब मोही कहने लगे हाँ.....हाँ गृहस्थ जैसा मोही भी कोई नहीं। विषय कषायों में आमूल.....चूल रचा पचा वह कैसे निर्मोही हो सकता ? **अपेक्षा की बात लेकर चलना चाहिए, उसी को यदि सिद्धान्त ग्रन्थ मानकर चलेंगे तो सिद्धान्त का भी अन्त हो जायेगा और जो सिद्ध सम्यग्दर्शन है उसका भी अन्त हो जायेगा।** मोक्ष मार्ग पर आरूढ़ होना अत्यन्त आवश्यक है, उस मुनि के लिए उसके बिना लक्ष्य की पूर्ति, मंजिल की प्राप्ति नहीं हो सकती।

एक बात और कहना चाहूंगा कि इस संसार में जितने भी स्कूल कालेज है, उन सब स्कूलों में, स्कूलों में, कालेजों में ३३ या १६ नम्बर मिलने पर विद्यार्थी पास माना जात है। ४४ अंक के ऊपर बढ़ जाये तो सेकिन्ड डिवीजन मानी जाती है। ५८ या ५६ नम्बर मिलने पर गुड सेकिन्ड यानी नियर अवाऊट फरर्ट क्लास (First Class) मानी जाती

है। और यदि ६० नम्बर मिल जाते है तो कहना ही क्या ? बड़े-बड़े प्रोफेसरों के द्वारा पुरुस्कृत हो जाते है, और उसमें भी यदि ७० प्रतिशत के ऊपर चले जाते हैं तो फिर कहना ही क्या ? फिर वह कुलपतियों के द्वारा भी सम्मानित हो जाता है। और वे कहते है कि भैया ! मैंने भी जीवन में इस कक्षा में इतने नम्बर नहीं पाए जो तुमने पर लिए, इसलिए हम कम से कम तुम्हारा सम्मान करके ही खुशियाँ मना लेते हैं यह तो रही लौलिक क्षेत्र की बात।

हमारे कुन्दकुन्द महाराज, समन्तभद्र महाराज, तब तक टोकते रहते हैं, तब तक कान पकड़ते हैं, जब तक १०० नम्बर में से एक भी नम्बर कम रहता है। कितना कठिन हो गया, सौ बाई सौ नम्बर लेने वाली कोई है यहाँ ? और जब तक उन्हें सौ बाई सौ नम्बर नहीं मिल जाते तब तक वह पास नहीं माना जाता। सप्लीमेंट्री से घिसते-घिसते पास होना बात अलग है। आप कहेंगे महाराज प्लग का अर्थ फेल होना है, सप्लीमेंट्री का अर्थ तो फेल नहीं होता....हाँ भैया ! यह परिभाषा बना दी गई है। जब हम पढ़ते थे, उस समय सप्लीमेंट्री नहीं थी, और आज तो तीन-तीन विषयों में सप्लीमेंट्री आती है। यह सब लौकिक क्षेत्र में पास करने की बात है, कैसे भी उठा दो, पटक दो, घसीटते-घसीटते ले जाओ ! लेकिन ऐसा यहाँ पर बिलकुल भी नहीं होगा।

यह जैन धर्म का एक प्रकार से चलना है। चलने के लिए, विचारों के लिए और अधिगम के लिए इस प्रकार के प्रतिशत रखे गए है, इसमें एक भी नम्बर की कमी नहीं हो सकती। आप सुनो ! सोचो, और चलो तो मालूम होगा, कि कितना कठिन काम है यह, यह बिलकुल ध्यान रखना कि यदि थोड़ी भी कमी रह गई, तो फिर मंजिल नहीं मिल सकती। मंजिल की प्राप्ति के लिए पूरी की पूरी तैयारी करनी पड़ेगी। किन्तु बच्चे

बहुत होशियार होते हैं, ज्यों ही अप्रेल, मई आने लगती है। त्यों ही वे कहने लगते है, कि हम इस साल परीक्षा में नहीं बैठेंगे। क्यों नहीं बैठेंगे भैया! हम तो डिवीजन बनाना चाहते हैं, क्योंकि फैल होने की संभावना रहती है। और डिवीजन आ रही है तो कह देते है कि हम तो मेरिट में आना चाहते है, यह सारी की सारी कमजोरियाँ यहाँ नहीं चलेगी। जिस रत्नत्रय को महावीर भगवान ने प्राप्त किया था, कुन्द कुन्दाचार्य ने प्राप्त किया था, उसी रत्नत्रय को हम लोगों ने भी प्राप्त किया है। वह काल.....वह संहनन और आज यह संहनन फिर भी कोर्स वही है, कोई भी अन्तर नहीं है। आज कल के कैसे बच्चे है कोर्स के लिए हड़ताल करते है, हम भी भगवान के सामने हड़ताल कर ले.....नहीं.....नहीं यह संभव नहीं है। आठ अंग वाला सम्यग्दर्शन है इतना काल व्यतीत हो गया इसलिए कम से कम कुछ अंगों में तो कमी कर दो। किन्तु ऐसा नहीं चलेगा, और ज्ञान और चरित्र में भी किसी प्रकार की कमी नहीं चलेगी। **जब भगवान महावीर के समान ही सुख को प्राप्त करना तुम्हारे लिए इष्ट है, तो भगवान महावीर बनकर ही काम करना पड़ेगा।** जो मोक्षमार्ग महावीर के समय में था, वही मोक्षमार्ग आज है और आगे भी रहेगा। किन्तु आप लोगों की प्रवृत्तियाँ कितनी बिगड़ चुकी हैं, और वह प्रवृत्तियाँ इतनी अधिक मात्रा में बढ़ चुकी हैं कि क्या बताऊँ? बच्चे भी स्कूल से हमेशा छुट्टियाँ ही छुट्टियाँ चाहते हैं, छुट्टी के नाम से विद्यार्थी ऐसे फूल जाते हैं, जैसे बसंत में टेसू के फूल फूलते हैं। किन्तु! परिश्रम देखते ही मुरझा जाते हैं। आज इस कलिकाल में भी रत्नत्रय की प्ररूपणा ही नहीं बल्कि! उसका पालन और अनुभव किया जा रहा है।

आचार्य समन्दभ्रद कहते हैं, कि वह गृहस्थ उस मोही मुनि से भी श्रेष्ठ है, जो गृहस्थ मोक्षमार्गी हैं, वे निर्मोही है। उलझे हुए मुनियों को

सुलझे हुए गृहस्थों के उदाहरण देते हैं, वे हमारे आचार्य देव और ऐसा कथन सुनकर गृहस्थ फूल न जाए इसलिए उलझे हुए गृहस्थों को सुलझे हुए पशुओं के उदाहरण दिये जाते हैं, तथापि उलझे हुए मुनि का भी कितना महत्व है। इस बात को बताते हुए, आचार्य कहते हैं कि जब उलझा हुआ मुनि सुलझे हुए गृहस्थ के द्वार पर आहरार्थ पहुंचता है, और यदि वह गृहस्थ तीन बार नमोऽस्तु महाराज कहकर विधि पूर्वक पड़गाहन करता है तब कहीं उसके यहां जाकर महाराज अहार करते हैं, अन्यथा नहीं। यह ध्यान रखना कि गृहस्थ की दुकान उन्हीं के माध यम से चलने वाली है, तो इस प्रकार कहने का मतलब यह है कि जब तक तुलना नहीं की जाती तब तक व्यक्ति ऊपर नहीं उठता अतः इस प्रकार की तुलना आवश्यक है। समयसार में आचार्य कुन्द कुन्द देव एक स्थल पर कहते हैं :—

✣ जहकणयमग्नि तवियंपि, कणय सहावं णतं परिच्चयदि।
वह कम्मोदय तविदो ण जहदि णाणी दुणाणित्तं।।

जिस प्रकार अग्नि से तपाने के उपरान्त भी कनक अपने कनकत्व अर्थात स्वर्णपने को नहीं छोड़ता है, उसी प्रकार कर्म रूपी महान अग्नि के द्वारा तपने के उपरान्त भी ज्ञानी लोग अपने ज्ञानीपने को नहीं छोड़ते हैं, तथा पांडवादित्। जैसे पांडवों ने अपने ज्ञानीपने को नहीं छोड़ा। अब उसी उदाहरण में तुलना करनी है। पांडव कितने थे? पांच थे (धर्म, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव) जिसमें से धर्म, भीम और अर्जुन ये तीन तो मुक्त हो गए, और शेष दो को मुक्ति का लाभ नहीं मिला। किन्तु सवार्थ सिद्धि गए, यह सर्वार्थ सिद्धि क्या वस्तु है? तो आप जानते ही है षट्खण्डागम जैसे महान ग्रन्थों की बाचना सुन रहे हैं यह सबसे ज्यादा सुखमय और पुण्य के फल स्वरूप तेतीस सागर वाली आयु है, वहाँ पर दोनों तेतीस सागर के लिए अटक गए। यहाँ पर यह बात सोचनीय

* समयसार/१८४

हैं कि जो नकुल और सहदेव सर्वार्थ सिद्धि को गए हैं वह बिना रत्नत्रय के नहीं गए है। और वे दोनों एक ही भवातारी हैं वहां से आकर नियम से मुक्ति जाएगे। रत्नत्रय का फल मुक्ति होता है, सो वह उन्हें मिला नहीं। क्या कमी रह गई ? उनके अन्दर, तो हमने पहले जो उदाहरण दिया था कि ९९ नम्बर तो मिल गए लेकिन ! एक नम्बर कम रह गया। यह कमी क्यों रह गयी ? वे उलझ गये, अब हम गृहस्थों का उदाहरण तो उन्हें दे नहीं सकते, गृहस्थ कैसा भी मोक्ष मार्गी बने कदाचित् दर्शन मोह का क्षय भी किसी प्रकार कर ले, तो भी सर्वार्थ सिद्धि तीन काल में नहीं जा सकता.....नहीं जा सकता.....नहीं जा सकता। अभी-अभी पांचवी पुस्तक में पंडित जी कह रहे थे कि वह गृहस्थ/श्रावक कितना भी प्रयास करें, तो भी सोलहवें स्वर्ग से ऊपर नहीं जा सकता। फिर ऐसा कथन क्यों ? तो वस्तुतः भूमिका का वर्णन है। उन दो मुनियों की तुलना अब गृहस्थों के साथ की जाय क्या ? नहीं.....नहीं उनकी तुलना अब उन मुक्त हुए पाण्डवों के साथ करेंगे। कहना यह होगा कि देखा, उन्होंने कैसा संकल्प को छोड़ा नहीं वह अपने संकल्प से चिगे नहीं। ज्ञानी लोग अपने संकल्प से चिगते नहीं है, किसी भी प्रकार की कमी उन्होंने नहीं रखी, और मोह का क्षय करके वह मोक्ष चले गए। और वह शुभ कार्य तुमने किया नहीं। जिससे यह परिणाम निकला कि संसार का काल और बढ़ गया। संसार का एक अर्थ और समझना।

संसार में चार गतियां है। गति से गत्यान्तर ले जाने में कारण है नाम कर्म, और नामकर्म के साथ गठ बन्धन रहता है, आयुकर्म का आयुकर्म ही संसार का कारण माना जाता है। इस आयुकर्म को ही आचार्यों ने संसार की संज्ञा दी है, अन्य कर्मों को नहीं। आयु है तो वह नियम से नाम कर्म का प्रबन्ध करेगा ! इस प्रकार वह भव विपाकी प्रत्यय

संसार में अटकाने वाली सामग्री बाद में देता जायगा संसार में जो भी प्राणी अटके हुए हैं वह मात्र आयु कर्म की बजह से अटके हुए है। केवल ज्ञान होने के उपरान्त भी उस अनन्त शक्ति को आयु कर्म कह देता है कि चुप ! बैठ जाओ मेरे सामने कुछ नहीं चलेगा, जैसा हमने अपने आपको बन्धन में डाल दिया वैसा तुम्हें भी बन्धन में डालूंगा। अनन्त चतुष्टय ले लो सब कुछ चतुष्टय ले लो लेकिन ! अपने भी चतुष्टय चल रहे हैं। किन्तु ! रहना पड़ेगा यही पर और इस आयु कर्म का जो बंध होता है, वह शुभ परिणामों के साथ ही होता है, शुद्धोपयोग की निरास्त्रव कहा है और शुभोपयोग को सास्त्रव कहा है। केवल शुभोपयोग संसार का ही कारण है ऐसा कह दें, तो ऐसा नहीं है। और यदि संसार का कारण है तो अन्यत्र कहीं पटक दो तो, उसे पटक नहीं सकता। शुभोपयोग के साथ आयु कर्म का बन्ध होने से, उन्हें सर्वार्थ सिद्धि जाना पड़ा और वह मोह के साथ ही चलता है। मोह भाव तो शुद्धोपयोग नहीं है, मोह सो पुण्य नहीं है, मोह सो शुभभाव नहीं है। किन्तु शुभभाव की भी क्या महिमा है ? तो आचार्य वीर सेन स्वामी धवला की पुस्तक में कहते हैं :—

✣ सुह सुद्ध परिणामेहि कम्मक्खयाभावे तक्खयाणुव वत्ती दो।

यदि शुभ और शुद्ध परिणामों में से कर्मों का क्षय न माना जाय फिर कर्मो का क्षय ही नहीं हो सकता। इन दोनों भावों के अलावा इस दुनियां में अन्य कोई साधन नहीं है, जो कर्मों का क्षय कर सके। इसलिए क्या करना चाहिए ? तो शुद्धोपयोग की भूमिका हो तो शुद्धोपयोग लिया जाय, और यदि नहीं है तो शुभोपयोग अपना लिया जाय। किन्तु ध्यान रखना ! रात के बारह बजे भूलकर भी शुद्धोपयोग, अशुभोपयोग के पास नहीं जाता, जिसको बोलते हैं, विषय कषाय में रचने में रूप प्रवृत्ति अपने

* तत्वार्थ सूत्र/अध्याय ४/सूत्र ९

लिए सहारा लेने योग्य नहीं हैं। पुण्य का आस्तव केवल संसार के लिए कारण है, ऐसी मान्यता ग्रन्थों से मेल नहीं खाती। यदि इस प्रकार की धारणा किसी ने बना ली हो, तो उस धारणा को उल्टा लेनी चाहिए क्योंकि !यह भूमिका उनके लिए भी नहीं बन पाई, जो नकुल और सहदेव एक ही भवातारी थे। शुद्धोपयोग की भूमिका से च्युत होने उन्हें आयु कर्म का बंध हुआ। आयु कर्म बंधने के उपरान्त भले ही कोई उपशम श्रेणी चढ़ जाय लेकिन ! नीचे ही आना पड़ता है, और जिस गति की आयु का वंध हुआ है, वहां जाना ही पड़ता है। इन्होंने शुद्धोपयोग की भूमिका में तेतीस सागर की आयु का बंध किया परिणाम स्वरूप इन्हें सर्वार्थ सिद्धि में इतने काल तक रहना पड़ रहा है। फिर भी बालब्रह्मचारी रहते है। तत्त्वार्थ सूत्र में एक सूत्र आया है—

"परे ऽ प्रवीचाराः"

अप्रवीचाराः परे कौन ? कल्पों से ऊपर जो विमान है, नव ग्रैवेयक अनुदिश, पाँच अनुत्तर विमानों में प्रवीचर नहीं होता, प्रवीचार का अर्थ है, मैथुन। काम वासना का वहाँ पर कोई ठिकाना नहीं। ऐसा कहने के उपरान्त भी यह ध्यान रखना है कि वहां पर पुरुष भेद का अभाव नहीं है ऐसा क्यों हुआ ? क्या कारण है ?

यह बात अलग है कि पुरुष वेद का उदय तो रहेगा, क्योंकि वेदों का अभाव नव में गुणस्थान के उपरान्त ही होता हैं, और वह तो चतुर्थ गुणस्थान में है। अतः वेद तो रहेंगे लेकिन ! वेद का जो कार्य है वह कार्य नहीं होगा, लेकिन मैथुन संज्ञा फिर भी मौजूद रहेगी। उस संज्ञा के प्रतिकार करने की कोई आवश्यकता नहीं होती है। उनको वेद के उदय में जैसे नीचे के स्वर्गों अथवा मनुष्यों में प्रवृत्ति होती है, वैसी उन लोगों में नहीं होती इसलिए वे बालब्रह्मचारी माने जाते है। इतने में ही आप

समझ लो कि ब्रह्मचारी रह गये तो कितने कार्य से छुट्टी मिल गई, अब उन्हें सिगड़ी चूल्हा जलाने की आवश्यकता नहीं। गृह लक्ष्मी की कोई आवश्यकता नहीं। व्यवस्था की भी जरूरत नहीं, एक हाथ का उवज्जल शरीर रहता है, और तत्व चर्चा में ही अपना सम्पूर्ण काल व्यतीत करते हैं। फिर भी वह ऊपर से नीचे की ओर देख रहे होंगे, इस पपौरा जी क्षेत्र में भीड़ क्यों हो रही है ? वहाँ पर हम सभी चले जाऐं तो जल्दी हमारा हमारा कल्याण हो जाएगा।

नरकाया को सुरपति तरसै, सो दुर्लभ प्राणी।

ऐसा क्यों हो रहा ? इसलिए हो रहा, वहां पर संयम नहीं है, और यहां पर संयम है स्वर्गों में मात्र चतुर्थ गुणस्थान तक की उन्नति सम्भव है, लेकिन मनुष्य गति में तो चौदह गुणस्थान तक प्राप्त किए जाते हैं। आज वर्तमान मान में यहां पर चौदह गुणस्थान तो नहीं, किन्तु ७ गुणस्थान अवश्य ही प्राप्त कर सकते है। यदि आप छोटा सा भी संकल्प कर लोगे तो चतुर्थ गुणस्थान से पंचम गुणस्थान हो सकता है। वह मौलिक पद, वह दुर्लभ वस्तु जिसे अहमिन्द्र भी प्राप्त नहीं कर सकते। अष्टमूल गुण धारण करने वाले श्रेष्ठ श्रावक से भी गया बीता जीवन माना जाता है स्वर्गों का। जहां पर जीवन पर्यन्त रत्नत्रय का पालन करने वाले मुनि भी पहुँच गये हैं, और अब उन्हें वहां पर संयम की गंध भी नहीं आ रही है। तब आचार्य कुन्द-कुन्द देव कहते हैं कि तुमने अपने ज्ञानी पने में बट्टा लगा लिया।

आदिनाथ, भरत और बाहुबली इन तीनों ने पूर्व जन्म में मुनि व्रत धारणकर कठोर तपश्चरण किया था। फलस्वरूप तीनों सर्वार्थसिद्धि गए थे, वहां से चयकर, मुनि बनकर एक ही भव में मुक्त हो गए। यह जो उलझन है, इसका बड़ा कमाल है, इतनी उलझन हो सकती है। है।

मतलब यह कि सर्वार्थसिद्धि से सिद्ध शिला की दूरी मात्र बारह योजन ही है, कोई देव चाहे कि वह वहीं का वहीं चला जाए, जैसे आजकल अंतरिक्ष में राकेट पहुंचा दिये जाते हैं। उसके साथ एक मशीन और शटल चलती है, राकेट को ऊपर भेज दिया जाता है, वहाँ राकेट के साथ जो शटल रहती है, उसे नीचे उतार दिया जाता है। किन्तु ! ऐसा यहां नहीं होता, इतना ही नहीं मेरु पर्वत की चोटी और सौधर्म स्वर्ग को जो ऋजु पटल है उसमें एक बाल का ही अन्तर है। कोई चोटी पहुंच जाए मेरु पर्वत की चोटी और वहां से यूँ ही खिसक जाए, स्वर्ग में पहुँच जाए, नहीं कोई भी व्यक्ति वहां से बाल मात्र अन्तर का भी उल्लघंन नहीं कर सकता। क्योंकि वहां तक मध्य लोक की सीमा है और उसके उपरान्त उर्ध्वलोक की सीमा है, उर्ध्वलोक की सीमा में हवा अलग है।

वहाँ पर भी हवा है। वहां पर भी पानी है। वहां पर भी सब कुछ है। लेकिन ! व्यवस्था अलग है, वहां का वातावरण आप लोगों को हजम नहीं होने वाला। वहाँ पर जाने के लिए पासपोर्ट जो है, वह यहीं से बनाने पड़ते हैं। उस सर्वार्थ सिद्धि को जाने के लिए रत्नत्रय का पासपोर्ट होना जरूरी है, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र की बात फिर भी समझ में आ जाती है। लेकिन ज्ञान के बारे में बड़ी सूक्ष्मता है, ज्ञान को मिथ्या होने में देर नहीं लगती। क्रोध के वशीभूत, होकर, मान के वशीभूत होकर, लोभ के वशीभूत होकर अथवा किसी डर के कारण कोई व्यक्ति अर्थ में थोड़ा सा भी अन्तर कर देता है, तो उसका सम्ज्ञान कलंकित हो जाता है। उसका ज्ञान सम्यक् नहीं माना जा सकता, वह भले ही चाहे अपने आप को सम्यग्ज्ञानी कहता रहे। आचार्य कहते हैं उसका ज्ञान समीचीन नहीं रहा, क्योंकि डर के मारे, वह बदलता ही जा रहा है। **यह बदलाहट यह दल बदलूपन व्यक्ति के अंदर विद्यमान गुणों को समाप्त कर देता**

है। सम्यग्ज्ञानी ही एक मात्र निष्पक्ष/निर्दलीय होता है, उसे दल पक्षपात से कोई मतलब नहीं रहता। आगमिक चर्या आगम की बातें और आगम का यथार्थ श्रद्धान ही उसका पक्ष रहता है। जैसा वह रहता है, वैसा ही कहता है उसकी कथनी और करनी में कोई अन्तर नहीं रहता। तीन लोक की सपत्ति का भी उसे लोभ दिया जाय तो भी वह आगम के अर्थ में एक अक्षर का भी परिवर्तन नहीं कर सकता, इसी को आगम ग्रन्थों में कहा गया है। भेद सम्यग्ज्ञान।

यह बात और विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि जिस प्रकार उलझे हुए मुनियों के लिए सुलझे हुए गृहस्थों के उदाहरण दियें हैं। उसी प्रकार उलझे हुए गृहस्थों के लिए सुलझे हुए पशुओं के भी उदाहरण दिए गए हैं। सुन रहे हो कि नहीं रत्नकरण्डक श्रावकाचार में उदाहरण के लिए मेंढक आया है, कुत्ता आया है। शूकर आया है, मातअंग आया है। मातअंग किसको बोलते हैं ? चाण्डाल को, आज वह वर्ण नहीं है, जो इस प्रकार का हीन कार्य करते है। जिसे मात्र हिसात्मक (फांसी पर चढ़ाना) हीन कार्य करने के लिए नियुक्त किया जाता था। वे भी अंहिसाणुव्रत के सिर मौर बन सकते हैं। और बने हैं। पूजन के लिए कोई सेठ साहूंकार पुजारी का उदाहरण उन्हें नहीं मिला, जो मेंढक का नाम रखना पड़ा। स्वामी समन्दभद्र बहुत आगे के परीक्षक थे, इसलिए मोक्ष मार्गस्थो कहकर उठा भी देते हैं, लेकिन कोई भूल जाय तो उसको पशुओं के सामने लाकर रख देते हैं। रत्नकरण्डक श्रावकाचार में आचार्य समन्तभद्र कहते हैं :—

✣ अर्हच्चैरणसपर्या महानुभावं महात्मनामवदृत।
भेकः प्रमोदमत्तः कुसर्मनैकेन - राजगृहे।।

एक भक्त भगवान के चरणों की पूजन का इच्छुक एक छोटी सी पाँखुड़ी अपने दांतों तले दबाकर जा रहा है। फुदक-फुदक कर कूंदने वाला वह मेंढक राजगृह नगर में पूजन की महिमा बतलाने वाला उत्तम

* रत्न करण्डक श्रावकाचार/१२०

श्रावक माना जाता है। अब यदि मेंढक के साथ आपकी तुलना की जाय तो क्या होगा भैया! ये बिलकुल गड़बड़ हो गया। यह बिलकुल ठीक है कि भावों की बात है। लेकिन ! आप लोग तो यही कहेंगे कि महाराज जमाना पलट गया है, इसलिए कुछ-कुछ चल जाता है नहीं ! बिलकुल नहीं !! अब ऐसा चलने वाला नहीं है। जब जैन कुल है तो मद्य, माँस, मधु की बात नहीं करनी चाहिए। किसी ने कहा, महाराज ! सम्यग्दर्शन के साथ इनके त्याग का कोई सम्बन्ध नहीं, तो वह व्यक्ति शिथलाचार पनपाएगा और एक दिन भार बनकर सम्पूर्ण समाज को डुबोने में कारण बन जाएगा। सप्त व्यसन, रात्रि भोजन, अभक्ष्य भक्षण और अनुपसेव्य चीजों का तो जैनी को हमेशा के लिए त्याग करना चाहिए।

यदि कोई ऐसा उपदेश देता है, कि मात्र सम्यग्दर्शन को सुरक्षित रखो। त्याग अलग वस्तु हैं, सम्यग्दर्शन अलग वस्तु है, ब्राह्म दुश्चारित्र से सम्यग्दर्शन का कोई सम्बन्ध नहीं तो नियम से उसका गुणस्थान चेन्ज हो जाएगा। उसमें कारण यह है कि उसकी उस प्रवृत्ति से उस उपदेश से सारी की सारी समाज उसका समर्थन करने लग जाएगी। आचार्य श्री समन्तभद्र कहते है, कि ऐसे व्यक्तियों को इन पशुओं से शिक्षा लेनी चाहिए। सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र आत्मा की वह भीतरी परिणति है, जिसका अंदाज हम इन चर्म चक्षुओं से नहीं लगा सकते जाति कुल और परम्परा से बंधकर के धर्म नहीं चलता है। मैं जैन हूँ इसलिए मेरे पास चारित्र हो गया ऐसी कोई बात नहीं ? **धर्म का संबंध देहाश्रित कम हुआ करता है बल्कि आत्माश्रित ज्यादा हुआ करता है।** एक मुनिराज आत्मा में लीन हैं, शान्ति के साथ गुफा में बैठे हुए हैं। तत्व चिन्तन चल रहा है कहाँ पर क्या होने वाला है, कोई पता नहीं किसी की और किसी प्रकार की कोई चिन्ता नहीं। यह गाथा उनके मानस पटल पर तैर रही है :—

✣ अहमिक्को खलुसद्धो दंसण णाण मइओ सदा रूवी।
णवि अत्थि मज्झ किंचिवि अण्णं परमाणु मित्तंपि।।

मैं शुद्ध बुद्ध एक आत्म तत्त्व हूँ। निष्कलंक निरंजन ज्ञान दर्शन रूप उपयोग के अलावा अणुमात्र भी मेरा नहीं है। इस प्रकार शुद्धोपयोग

मयी आकिंचन्य भावना भा रहे थे। इधर घटना दूसरी घटती है। कई दिनों का भूखा एक भयंकर सिंह दहाड़ता हुआ आ रहा है गुफा की ओर, उसने देखा कि अभी अभी एक सुर्ख लाल व्यक्ति गुफा के अन्दर गया है। बहुत अच्छा शिकार है, मेरी सारी की सारी भूख मिट जायगी मैं तृप्त हो जाऊँगा। सिंह दहाड़ता हुआ उस गुफा की ओर दौड़ा सिंह की दहाड़ एक शूकर ने सुनी, उस दहाड़ में सिंह का क्या उद्देश्य था यह भी वह समझ गया। किस ओर जाएगा और क्या करेगा इन सब बातों को शूकर तुरन्त समझ गया। शूकर शीघ्र ही सिंह के सामने आ धमका, और कहता है :—

—तुम उधर नहीं जा सकते।

—मै जाऊँगा, सिंह ने दहाड़ते हुए कहा।

—कैसे जाओगे ? मैं तो बीच में हूँ, पहले मुझे अलग करो फिर बाद में ही तुम गुफा में जा सकोगे। शूकर ने दृढ़ता के साथ कहा।

—शेर गुस्से से बोला क्या कहता है ? जरा ध्यान से बोल, मैं वनराज हूँ।

—हां तुम वनराज हो तो मैं भी तो वन में रहता हुँ। लेकिन ! आज राजा और प्रजा की बात है। राजा यदि अन्याय पर उतारूँ हो जाता है, तो प्रजा उसे कभी नहीं छोड़ेगी। **मैं तुम्हारे अन्दर में रहने वाला प्राणी जरूर हूं, लेकिन ! मेरा प्रण है कि अन्याय करने वाले को कभी छोडूंगा नहीं चाहे मेरे प्राण भले ही चले जाए।** शूकर ने नम्रता पूर्वक कहा।

—छोड़ दे रास्ता। शेर ने गर्व पूर्वक कहा।

—नहीं छोडूंगा, कदापि ! नहीं छोडूंगा ? शूकर अपनी बात पर अड़ा रहा।

और कस्समकस्सा आरम्भ हो गया। शूकर भी अधिक बलशाली होता है, एक दूसरे का उलट पुलट करने लगे। कस्समकस्सा गुथ्थम-गुत्था

* समयसार/गाथा

होते-होते दोनों का अवसान हो जाता है। उस के बाद क्या हुआ तो आप कहेंगे :—

अति संक्लेश भावते मरयो घोर श्वमसागर में पर्‌यो।

दोनों ने लड़ाई लड़ी। और ऐसी लड़ाई लड़ी कि अपने आपकी चिंता भी नहीं की। और अभी-अभी पं० जी कह ही रहे थे कि जो अपनी आत्मा की हत्या करता है वह सबसे ज्यादा पापी माना जाता है। शूकर ने भी अपने आपको कस्समकस्का में डाल दिया, और सिंह ने भी अपने आपको डाल दिया। समझ में नहीं आता है कि दोनों को रोद्रध्यान था ही कृष्णा लेश्या भी थी, इसलिए दोनों नियम से उतर गये होंगे सीधा नरक में। किन्तु आचार्य समन्दभद्र कहते हैं कि नहीं, एकउर्ध्वगामी हुआ, और एक अधोगामी। शूकर स्वर्ग गया, और सिंह नरक में। शूकर का अधः पतन क्यों नहीं हुआ ? तो शूकर का परिणाम शुभ था, और सिंह का अशुभ था। सिंह का भाव मुनिराज के ऊपर प्रहार करने का था, और उस प्रहार को रोकने के लिए शूकर ने हमला बोला था। क्या बात कह दी ? बड़ी अद्‌भुत बात कह दी, वह हमला करने वाला शूकर स्वर्ग चला गया, इस प्रकरण से स्पष्ट हो गया बन्धुओं ! परिणामों के द्वारा ही उन्नति और अवनति हुआ करती है। ऐसा कौन सा, दान था ? जो उस शूकर ने दिया था। यह ध्यान रखना दान देना मात्र श्रावकों पर ही निर्धारित है, ऐसी बात नहीं है। यहां पर पशुओं के उदाहरण दिए जा रहे हैं, उसने आहार दान नहीं दिया, उपकरण दान नहीं दिया औषध दान का तो प्रश्न ही नहीं उठता। ऐसा कौन सा महान दान दिया जिससे उसकी उन्नति हुई। तो उसने आवास/वसतिका दान दिया था, आवासदान का मतलब क्या है ? तो जहां पर धर्म ध्यान किया जाता है, उस क्षेत्र की रक्षा करना है ? **धर्म ध्यान करना या धर्म ध्यान करने वालों की सुरक्षा करना दोनों एक ही बात हैं।** इसका मतलब यह नहीं कि धर्म ध्यानी यह कह देते है कि भैया ! मेरी रक्षा करना मैं सामयिक में बैठ रहा हूं। धर्म-ध्यान में लीन उन मुनि महाराज को जब शरीर की ही चिन्ता नहीं तो बाहर क्या हो रहा है ? इसका विकल्प भी कैसे

हो सकता है, और मेरी कोई रक्षा करे ऐसा सोच भी कैसे सकते हैं ? मेरी रक्षा संसारी प्राणी कैसे कर सकता है। मेरी रक्षा तो मेरे रत्नत्रय के द्वारा ही होगी और उस रत्नत्रय का पालन मैं कर ही रहा हूँ। वे मुनि शुभोपयोग की भूमिका से उठकर शुद्धोपयोग में ऐसे लीन हो गए, भीतर अपनी अनुभूति की अनुभूति करने लगे। ओर फिर उनका उपयोग डावांडोल नहीं हुआ निश्चित निराकुल एकदम शांत। भावों की विशुद्धता बढ़ती गई।

यह है आवास दान का महात्म्य, शूकर सोच रहा था कि कहीं मुनिराज के ऊपर उपसर्ग न हो जाय। यदि उपसर्ग हो गया तो संभव है जिस प्रकार नकुल और सहदेव उलझ गए थे उसी प्रकार यह भी उलझ सकते है। इस प्रकार के दान देने वाले शूकर को उन्होंने कितने ऊपर उठाया। धन्य है शूकर का आदर्श। लेकिन ! पशुओं में महान होने पर भी सिंह का नाम तक नहीं लिया, बिलकुल नीचे कर दिया उसको, क्योंकि उसके परिणाम बिगड़े हुए थे। पापमयी थे, किसको खाँय किसको नहीं खांय इसका भी ज्ञान नहीं था। आज विद्वानों के द्वारा बड़े-बड़े गुणस्थानों की चर्चा तो की जाती है, आत्मा परमात्मा की चर्चा तो की जाती है, लेकिन खान पीन के बारे में पूंछा जाय तो आप कहते हैं कि हमारे यहां तो महावीर भगवान ने समता रखने के लिए कहा है इसलिए हमें जो कुछ भी मिलता है, उसमें हम समता रखकर खा लेते हैं.....। ध्यान रखना भक्ष्य-अभक्ष्य में समता नहीं किन्तु कर्मो के उदय में अपने लिए जो कष्ट सुख दुःख आ जाते हैं उनमें हर्ष विषाद नहीं करते हुए नहीं उलझते हुए आगे बढ़ना है। हमारे आराध्य प्रभु ! महावीर ने यही कहा कि—

तुम भीतर जाओ
और.....
तुम्बी सम
तुम भी.....तर जाओ

भगवान महावीर के समान वे मुनिराज ऐसे भीतर चले गए कि

उन्हें देह की चिन्ता, न सिंह व्याघ्र और शूकर की चिन्ता। एक मात्र आत्मा की शतत् आराधना चल रही थी। आचार्य समन्तभद्र कहते हैं—

कश्चिदेव भवेत् गुरुः

आत्मा का कोई भी वीतरागी साधक गुरु बन सकता है। लेकिन ! आचार्य विद्यानन्द जी और भी आगे बढ़ गए और वे कहते हैं।

कः भवेत् गुरुः ?
चित्त एव गुरुः।

यानी कि आत्मा ही गुरु हैं। इस परम गुरु रूपी आत्मा के अलावा संसार में अन्य कोई शरण नहीं है। अन्दर से रत्नत्रयात्मक आत्मा ही शरण है, और बाहर से पंचपरमेष्ठी और सच्चे देव शास्त्र गुरु की शरण है। इसके अलावा किसी की भी शरण नहीं है। आपका यदि कोई काम बिगाड़ता है तो आप पंचायत की शरण में चले जाते है, और कहते हैं कि मेरा यह काम निपटा दो। उसी प्रकार साधक का बाहर यदि काम बिगड़ रहा है तो पंच परमेष्ठी की शरण में जाओ और निवेदन करो कि महाराज मेरा यह काम निपटा दो। क्योंकि ! मैं तो अल्पज्ञ हूँ, कुछ जानता नहीं हूँ। और यदि बाहर का काम निपट गया तो तुम भीतर चले जाओ। इस प्रकार भेद और अभेद रत्नत्रय आराधना की जाती है। इस प्रकार की आराधना करते हुए आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने रत्नकरण्डक श्रावकाचार जैसी अमर कृति की रचना करके हम लोगों पर बड़ा उपकार किया है। महाराज जी (आचार्य ज्ञानसागरजी) कहा करते थे, यह रत्नकरण्डक श्रावकाचार छोटी कृति जरूर है, किन्तु ! वास्तव में इसमें रत्नत्रय की स्तुति की गई है। इस कृति में ४१ श्लोकों के द्वारा, धर्म, सम्यग्दर्शन उसके अंग और फल का वर्णन किया है। इस प्रकार का विशद वर्णन कहीं अन्यत्र देखने में नहीं मिला। सम्यग्ज्ञान की प्ररूपणा पांच कारिकाओं के द्वारा की गई है, एक लाक्षणिक करिका है, और शेष चार कारिकाओं के द्वारा, चारों अनुयोगों का वर्णन किया है। वर्तमान से अनुयोगों के बारे में यदि प्रौढ़ और दार्शनिक प्ररूपणा मिलती है तो एक मात्र आचार्य समन्तभद्र की है सम्यग्ज्ञान के बारे में

वे लिखते हैं—

✣ अन्यूनमनति रिक्तं याथा—तथ्यं बिना च विपरीतात्।
निःसन्देहं वेद यदाहुस्तज्ज्ञानमागमिनः।।

जो ज्ञान वस्तु के स्वरूप की न्यूनता से रहित, अधिकता से रहित, और विपरीता से रहित निस्सन्देह जैसा का तैसा जानता है, उस ज्ञान को गणधर, श्रुतकेवलि सम्यग्ज्ञान कहते है। इस प्रकार सम्यग्ज्ञान का कथन करने के उपरान्त सम्यक्चारित्र के लिए १०४ कारिकायें लिखीं। जिस मुमुक्ष भव्य प्राणी ने अज्ञान रूपी मोहांधकार को समाप्त करके सम्यग्ज्ञान रूपी प्रकाश पा लियाहै वह व्यक्ति फिर—

✣ मोह तिमिरापहरणे, दर्शनलाभादवाप्त संज्ञानः।
रागद्वेष निवृत्यै, चरणं प्रतिपद्यते साधुः।।

सज्जन वही होता है, जो राग द्वेषस की निवृत्ति के लिए चारित्र को अंगीकार करता है। बन्धुओ ।मनुष्य जीवन की दुर्लभता आप जान ही रहे हैं, और अज्ञान को हटाने के लिए यदि सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है तो राग द्वेष को दूर करने के लिए नियम से चारित्र की शरण लेनी चाहिए। यदि सकल चारित्र को आप नहीं अपना सकते तो कम से कम देश चारित्र को तो अपनाना ही चाहिए। यही एक मात्र भगवान का उपदेश है इसी से मुक्ति का लाभ होने वाला है।

और अन्त में वही पंक्तियाँ पुनः दुहराता हूँ—

तुम भीतर जाओ
और.....
तुम्बी सम
तुम भी.....तर जाओ

॥ महावीर भगवान की जय ॥

खेल/खिलौना

पुरुष और प्रकृति

इन दोनों के

खेल का नाम ही संसार है,

यह कहना

मूढ़ता (व्यवहार) है

मोह की महिमा मात्र

खेल, खेलने वाला

तो पुरुष ही है

और

प्रकृति खिलौना मात्र

स्वयं को

खिलौना बनाना

कोई खेल नहीं है

विशेष खिलाड़ी की बात है यह

("मूकमाटी" महाकाव्य से)

47/A

परिचय-पुष्प

श्रमण संस्कृति के उन्नायक युगदृष्टा **आचार्य श्री विद्यासागरजी**, बीसवीं सदी के प्रभावशाली आचार्य हैं। वि.सं. २००३ (१० अक्टूबर १९४६) की शरद पूर्णिमा को आपका जन्म सद्लगा (वेलगांव कर्नाटक) में हुआ। २२ वर्ष की उम्र में मुनि दीक्षा प्राप्त कर मात्र ४ वर्ष की अल्प अवधि में (२२ नवम्बर १९७२) आप, अपने गुरूवर **आचार्य श्री ज्ञान सागर जी महाराज** द्वारा प्रदत्त आचार्य पद से अलंकृत हुये।

हित–मित/प्रिय उपदेशों से समाज में आचरण बोध जगाते हुये आप ग्राम नगर और तीर्थ क्षेत्रों में विहार कर रहे हैं। आपके इस प्रवास से जर्जरित उपेक्षित तीर्थों का उद्धार तो हुआ ही संघ की अभिवृद्धि भी हुई। जिसमें वर्तमान में शताधिक बाल ब्रह्मचारी साधु, सध्वियाँ और सैकड़ों ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणियाँ वरदानी छाया में साधनारत हैं। नैतिक और आध्यात्मिक स्तर को ऊँचा बनाने वाला हिन्दी/संस्कृत काव्य साहित्य सृजकर, आपने माँ भारती के भंडार को समृद्ध किया है। चिन्तन साधना से प्रसूत **''मूकमाटी''** महाकाव्य सा अमृत फल पाकर साहित्य जगत स्वयं धन्य है।

कलम और कदम का फासला जिन्होंने लगभग खत्म कर दिया है। जिव्हा और जीवन में उनके ऐक्य स्थापित हो चुका है ऐसी विश्व की विरल विभूति विराग मूर्ति आगमधर आचार्य श्री में अनुकम्पा और अनुशासन की जीवतता है। सर्वोदयी भावना से अनुप्राणित आचार्य श्री जिन शासन की अहिंसा को सेवा और करूणा से जोड़कर लोक चेतनावाही बन रहे हैं। मानवता के मसीहा आचार्य श्री सचमुच ही इस युग के अद्वितीय धर्म प्रभावक हैं।